VISHVA–JYOTI

REGD NO. PB-HSP-01
(1.1.2024 TO 31.12.2026)
R.N. No. 1/57

ISSN 0505-7523

मासिक पत्रिका (JOURNAL)

विश्वज्योति

(PEER REVIEWED JOURNAL)

(अभिनिर्देशित मासिक पत्रिका)

73वां वर्ष, अंक 8, नबम्बर, 2024

संचालक–सम्पादक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल

सह–सम्पादक
प्रो.(डॉ.) प्रेम लाल शर्मा

प्रकाशन स्थान
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान
साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

ISSN 0505-7523

प्रकाशक

विश्वेश्वरानन्द–वैदिक–शोध–संस्थान

साधु आश्रम, होश्यारपुर–146021 (पंजाब, भारत)

(अभिनिर्देशित पत्रिका)

(PEER REVIEWED JOURNAL)

प्रकाशन–परामर्शदात्री समिति :

डॉ. दर्शन सिंह निर्वैर, आजीवन सदस्य, वि.वै.शोध संस्थान कार्यकारिणी समिति, साधु आश्रम, होश्यारपुर।

डॉ. (श्रीमती) कमल आनन्द, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), 1581, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49-बी, चण्डीगढ़।

प्रो. जगदीश प्रसाद सेमवाल, आदरी प्रोफैसर, (वि. वै. शोध संस्थान, होश्यारपुर), एफ-13, पंचशील इन्कलेव, जीरकपुर (मोहाली) पंजाब।

प्रो. (सुश्री) रेणू कपिला, कोठी नं. बी-7/309, डी. सी. लिंक रोड, होश्यारपुर (पंजाब)।

प्रो. रघवीर सिंह, आदरी प्रोफैसर, वी.वी.आर.आई., साधु आश्रम, होश्यारपुर (पंजाब)।

डॉ. जयप्रकाश शर्मा, 1486, पुष्पक कम्पलैक्स, सैक्टर 49-बी, चण्डीगढ़।

प्रि. उमेश चन्द्र शर्मा, पी.ई.एस (1), रिटा., शिवशक्ति नगर, होश्यारपुर।

डॉ. नरसिंह चरणपंडा, अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, डायरैक्टर, IQAC, सैंटरल विश्वविद्यालय ओड़िशा, कोरापुट, ओड़िशा।

प्रो. (डॉ.) ऋतुबाला, चेयरमैन, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

प्रो. ललित प्रसाद गौड़, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

डॉ. रविन्द्र कुमार बरमोला, वी.वी.बी.आई. एस. एण्ड, आई.एस. (पंजाब विश्वविद्यालय पटल), साधु आश्रम, होश्यारपुर।

दूरभाष : कार्यालय : 01882 – 223582, 223606, मो. 7973153462

संचालक (निवास) : 01882–244750

E-mail : vvrinstitute@gmail.com ,
vvr_institute@yahoo.co.in

Website : www.vvrinstitute.com

मुद्रक : विश्वेश्वरानन्द वैदिक–शोध–संस्थान प्रैस, होश्यारपुर (पंजाब)

प्रकाशन विषयक विशिष्ट नियम

१ विश्वज्योति अभिनिर्देशित पत्रिका **(Peer Reviewed Journal)** विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित की जाती है।

२ पत्रिका **(JOURNAL)** प्रत्येक मास की २८ तारीख को (अनिवार्य रूप से) प्रकाशित होती है।

३ इसका प्रकाशन वर्ष अप्रैल मास से प्रारम्भ होता है।

४ इसके अप्रैल-मई एवं जून-जुलाई के दो वार्षिक विशेषांक प्रकाशित होते हैं।

५ भविष्य में जो भी प्राध्यापक अथवा शोध-छात्र पदोन्नति या यत्र-तत्र नियुक्तिहेतु विश्वज्योति में लेख को छपवाना चाहते हैं, वे कम से कम ५ पृष्ठ का अथवा अधिक से अधिक ७ पृष्ठ तक का सटिप्पण अपना लेख भेजें, टिप्पण नीचे या लेख के अन्त में दे सकते हैं। ऐसे लेखों पर ही (Peer Reviewed Journal) का ISSN नम्बर छापा जायेगा।

विशेष: स्वतन्त्र रूप से लेख भेजने वाले विद्वान् लेखकों के लिए यह बन्धन नहीं है। वे स्वतन्त्रता से अपनी रचना, कविता एवं नाटक भेज सकते हैं।

६ संस्थान के पैटर्न सदस्य, आजीवन-सदस्य तथा वार्षिक-सदस्यों को विश्वज्योति नि:शुल्क नियमत: भेजी जाती है।

७ अन्य संस्थाओं द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं के साथ इसका विनियम भी किया जाता है।

८ विश्वज्योति सम्बन्धी पत्रव्यवहार संचालक अथवा सम्पादक के पते पर किया जा सकता है।

९ किसी संस्था, पुस्तकालय एवं विद्वान् के आग्रह पर हिन्दी के प्रचार एवं प्रसार को ध्यान में रखते हुए उनको विश्वज्योति नि:शुल्क भी भेजी जा सकती है।

१० विश्वज्योति में समालोचनार्थ समालोच्य पुस्तक या ग्रन्थ की दो प्रतियाँ भेजनी अनिवार्य हैं। जिस अंक में समालोचना प्रकाशित की जाती है, वह अंक लेखक को नि:शुल्क भेजा जाता है।

११ विश्वज्योति का मूल्य निम्न प्रकार से है- भारत में एक प्रति का मूल्य १० रु: विदेश में ३ डालर। भारत में वार्षिक सदस्यता १०० रु: तथा विदेश में वार्षिक सदस्यता- ३० डालर। भारत में आजीवन सदस्यता १२०० रु: तथा विदेश में ३०० डालर है। विशेषाङ्क २ भाग भारत में ५० रु: तथा विदेश में १२ डालर हैं।

विशेष:- (क) लेखक को पारिश्रमिक देने का नियम नहीं है।

(ख) प्रकाशित लेख की एक प्रति लेखक को भेजी जाती है।

सम्पादक

भारत में एक प्रति का मूल्य : 10 रुपये.
विदेश में एक प्रति का मूल्य : ३ डालर.

विषय-सूची

लेखक	विषय		पृष्ठांक
डॉ. मृगांक मलासी	महाभारत के आख्यानों एवं उपाख्यानों में वर्णित नीति मीमांसा : एक विवेचन	लेख	7
डॉ. सत्यदेव सिंह	पारिवारिक व्रत एवं आचरण	लेख	15
डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'	स्वामी रामतीर्थ के जीवनादर्श उनके उनके 'पत्रों के दर्पण' में	लेख	21
डॉ. शैलजा आरोड़ा	श्रीराम-वाल्मीकि का अतिशय पावन और सुन्दर संवाद	लेख	27
श्री ताराचन्द आहूजा	सुनहु उमा ते लोग अभागी (रामचरित मानस ३.२.३३)	लेख	30
श्री सीताराम गुप्ता	बच्चों का व्यवहार ठीक करने के लिए जरूरी है कि पहले बड़े अपना व्यवहार ठीक करें	लेख	34
श्री प्रदीप कुमार सामंतराय	विचार परक आलेख भारतीय ज्ञान परंपरा के विचारणीय सूत्र	लेख	38
श्री चेतन शर्मा	पातञ्जल योग सम्मत विभूति	लेख	41
श्री देवेन्द्र कुमार मिश्रा	जीवन मिट्टी का खिलौना		
	पीपल की छांव		
	पकडा है हाथ	कविता	47
	संस्थान-समाचार		49

विश्वज्योति

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्॥ (ऋ. १,११३,१)

वर्ष ७३ } होश्यारपुर, कार्तिक, २०८१; नबम्वर, २०२४ { संख्या - ८

राजन्ये दुन्दुभावायतायाम्,
अश्वस्य वाजे पुरुषस्य मायौ।
इन्द्रं या देवी सुभगा जजान,
सा न ऐतु वर्चसा संविदाना।। (शौ. ६.३८.४)

शासक गण में, अच्छी कसी हुई दुन्दुभि में, घोड़े की हिनहिनाहट में, पुरुष की ललकार में जिस (स्वाभाविक शक्ति) का प्रकाश हो रहा है, (वही मेरे अन्दर भी हो)। जिस (स्वाभाविक शक्तिरूपिणी) देवी भगवती ने इन्द्र (तक) को प्रकट कर रखा है, वह तेज-पुंज को साथ लिए हुए हमें भी आकर कृतार्थ करे।

(वेदसार - विश्वबन्धुः)

नेहाभिक्रम-नाशोऽति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पम् अप्य् अस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

(गीता, २.४०)

(हे अर्जुन, जब योग-युक्त होकर कर्म किया जाता है, तो) इसमें (उपलब्ध की गई) प्रगति नष्ट नहीं होती, (इसमें) उलटा लौटना नहीं होता। (इस प्रकार से) अंश मात्र में भी (पालन किया गया) यह धर्म बड़े से बड़े भय से भी बचाये रखता है।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

माहभारत के आख्यानों एवं उपाख्यानों में वर्णित मीमांसा : एक विवेचन

- मृगांक मलासी

महाभारत भारतीय वाङ्मय का ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसके प्रणेता यशस्वी महर्षि वेदव्यास हैं। मिल्टन ने ग्रन्थ की परिभाषा देते हुए कहा है कि अच्छा ग्रन्थ एक महान् आत्मा का बहुमूल्य जीवनसार है। मति और हृदय जीवन के दो प्रधान स्तम्भ हैं, जिनसे ग्रन्थों के पृष्ठों पर सजीवता खिलती और खेलती है। महाभारत के सन्दर्भ में बात करें तो महाभारत में आर्यावर्त संस्कृति और सभ्यता के भव्य रूप जिस प्रकार दृष्टवत् होते हैं वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। महाभारत मात्र कौरव और पाण्डवों का इतिहास वर्णन मात्र नहीं है अपितु सनातन आर्य परम्परा का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रस्तुत करता है। महाभारत का शान्ति पर्व जीवन की सभी समस्याओं को हल करने में अद्यावधि सहायक है।

नीति एक ऐसा शास्त्र है कि जिसको मानवमात्र व्यवहार में लाता है। यदि नीति का अवलम्बन न किया जाए तो मनुष्य को संसार के अनेक कार्यों को करने में कठिनता होगी। हितोपदेश में नीति के दो रूप बताए गए हैं ङ्क धर्मनीति और राजनीति। रामचन्द्र वर्मा ने लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश में नीति को व्याख्यायित करते हुए कहा है कि व्यवहार की वह रीति जिससे स्वयं का हित हो और दूसरों को कष्ट न पहुँचे एवं समाज के हितार्थ निश्चित आचार, व्यवहार एवं राज्य और राष्ट्र की रक्षा तथा हित हेतु निश्चित रीति या व्यवहार।[१] महाभारत के आख्यानों एवं उपाख्यानों में नीति तत्व का विशद विवेचन प्राप्त होता है। उद्योग पर्व में कहा गया है कि धीर मनुष्य को उचित है कि पहले कर्मों का प्रयोजन, परिणाम तथा अपनी उन्नति का विचार करे तत्पश्चात् ही किसी कार्य को प्रारम्भ करे या न करे।[२] जैसे मछली बढ़िया खाद्य वस्तु से ढकी हुई लोहे की कांटे को लोभ में पड़कर निगल जाती है और फलस्वरूप मर जाती है। क्योंकि वह परिणाम पर चिन्ता नहीं करती।[३] किसी भी कार्य को करने से लाभ और हानि पर सम्यक् विचार किया जाना चाहिए जैसे उद्यान का माली उद्यान से एक-एक पुष्प का चयन करता है न कि उसकी जड़ को काटता है, उसी प्रकार राजा को चाहिए कि वह प्रजा की रक्षा पूर्वक उनसे कर ले; परन्तु यह भी ध्यान रखे कि प्रजा का शोषण न हो।[४]

उद्योगपर्व में कहा गया है कि मनुष्य का शरीर रथ है, बुद्धि सारथी है और इन्द्रियाँ उसके अश्व हैं। इन्हें नियन्त्रित करके सावधान एवं चतुर धीर पुरुष वश में किए हुए अश्वों से रथी की भाँति सुखपूर्वक संसार पथ का अतिक्रमण करता है।[५] यही भाव कठोपनिषद् में भी वर्णित हैं।[६] भारद्वाज-कणिक नीति के अन्तर्गत कहा गया है कि व्यक्ति को सहसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए अपितु उसे उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। जब तक समय अपने अनुकूल न हो जाए तब तक शत्रु को कन्धे पर बैठाकर ढोना भी पड़े तो वह भी करें। परन्तु जब अनुकूल समय आ जाए तब उसे उसी प्रकार नष्ट कर दें जैसे घड़े को पत्थर पर पटक कर फोड़ दिया जाता है।[७]

महाभारत के वनपर्व के अन्तर्गत नलोपाख्यान पर्व में राजा नल एवं दमयन्ती का वर्णन है। इसके अन्तर्गत राजा नल और विदर्भ राजकुमारी दमयन्ती के जन्म वृत्तान्त से लेकर स्वयंवर की कथा, द्यूतक्रीड़ा, वनगमन आदि का वर्णन किया गया है। वृहदश्व मुनि युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं कि मानव जीवन में सुख और दु:ख दोनों व्याप्त हैं। अत: सुख आने पर अत्यधिक प्रसन्न एवं दु:ख में अत्यधिक शोक नहीं करना चाहिए। जब दैव अर्थात् प्रारब्ध प्रतिकूल हो और पुरुषार्थ निष्फल हो जाए उस समय भी सत्त्वगुण का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने मन में विषाद नहीं लाते।[८] पुरुष को प्राप्त होने वाले सभी विषय सदा अस्थिर एवं विनाशशील हैं यह सोचकर उनके प्राप्त होने या नष्ट होने पर तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।[९]

महाभारत के आदिपर्व में सुन्दोपसुन्द के कथानक के माध्यम से यह बताया गया है कि वे दोनों दैत्य एक साथ रहकर सारी पृथिवी को जीतकर शत्रुओं से रहित एवं व्यथारहित होकर तीनों लोकों को पूर्णत: अपने वश में करके श्रेष्ठ आसनों पर स्थित होकर सुन्दरी स्त्रियों के साथ आनन्दमग्न होकर देवताओं की भाँति मनोरंजन किया करते थे[१०] परन्तु मदों से उन्मत्त होने के कारण एक सुन्दर स्त्री तिलोत्तमा को देखकर इनमें मद एवं काम का आवेश होने के कारण दोनों स्नेह और सौहार्द से शून्य होकर उस सुन्दरी को पाने के लिए आपस में एक-दूसरे के ऊपर गदाओं का प्रहार करने लगे और मृत्यु को प्राप्त हो गए। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मनुष्य को मद एवं काम के आवेश में आकर कोई निर्णय नहीं लेना चाहिए अपितु सन्मार्गी और विवेकशील रहना चाहिए।[११]

वनपर्व में नारद राजा शिवि की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यह नीतिगत संदेश दिया गया है कि व्यक्ति को क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिए। यश के लिए, धन के लिए अथवा भोग की लिप्सा के लिए दान नहीं करना चाहिए। कामना रहित होकर ही दान करना चाहिए। श्रेष्ठ पुरुष जिस मार्ग पर चलते हैं वही उत्तम मार्ग है।

अत: अपनी बुद्धि द्वारा उस उत्तम पथ का ही आश्रय लेना चाहिए यही धर्मात्माओं का मार्ग है।[१२] रामोपाख्यान में भी कहा गया है कि मनुष्य को धर्म पथ से कभी विचलित नहीं होना चाहिए तथा बाधाओं कष्टों का धैर्य से सामना करते हुए उचित अनुचित का सम्यक् विचार करना चाहिए।[१३]

उद्योग पर्व के अन्तर्गत पर्व के कहा गया है कि मनुष्य या राजा को किसी को भी अपनी बुद्धि, बल, पराक्रम आदि पर अभिमान नहीं करना चाहिए अपितु सभी से प्रेमपूर्वक आचरण एवं उसके हित के लिए काम करना चाहिए। जो व्यक्ति अहंकार में रहता है उससे सभी दूरी बना लेते हैं जबकि प्रिय बोलने वाले व्यक्ति का सभी सम्मान करते हैं और उसके सान्निध्य में रहने का प्रयास करते हैं।[१४] कर्णपर्व में श्रीकृष्ण द्वारा बलाक व्याध और कौशिक मुनि की कथा सुनाते हुए अर्जुन से कहते हैं कि प्राणियों की हिंसा न करना ही सबसे नीतिगत श्रेष्ठ धर्म है किसी की प्राण रक्षा के लिए अगर मिथ्या भाषण भी करना पड़े तो कर देना चाहिए किन्तु उसकी हिंसा किसी तरह से न होने दें।[१५] केवल अनुष्ठान में लाया गया असत्य रूप सत्य बोलने योग्य नहीं होता अत: वैसा सत्य न बोलकर पहले सत्य और असत्य का अच्छी तरह निर्णय करके जो परिणाम में सत्य हो उसी का पालन करना चाहिए यही नैतिकता है।[१६]जो लोग अन्यायपूर्वक दूसरों के धन आदि का अपहरण करना चाहते हैं अगर वे अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए अन्य से सत्य भाषण रूप धर्म का पालन कराना चाहते हैं तो वहाँ उनके समक्ष मौन रहकर उनसे पिण्ड छुड़ाने की चेष्टा करनी चाहिए, परन्तु यदि बोलना अनिवार्य हो जाए अथवा न बोलने से लुटेरों को सन्देह होने लगे तो वहाँ सत्य भाषण ही उचित और नैतिक है।[१७]

कर्णपर्व में राजा शल्य का कर्ण को एक हंस और कौए का उपाख्यान सुनाकर उससे श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करते हुए कर्ण को उनकी शरण में जाने हेतु नैतिक परामर्श दिया गया है। शल्य कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्य और असत्य की सम्यक् मीमांसा करते हुए सत्य के पक्ष में ही रहना चाहिए। जो असत्य का साथ देता है उसका विनाश सुनिश्चित है। पहले समय में वह कौआ जैसे वैश्य कुल में सब की जूठन खाकर पला था उसी प्रकार धृतराष्ट्र के पुत्रों ने तुम्हें जूठन खिलाकर पाला है, इसी कारण तुम अपने समान तथा अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करते हो।[१८] जिस प्रकार कौआ उत्तम बुद्धि का आश्रय लेकर चक्रांग नामक हंस के शरण में गया था उसी प्रकार तुम भी वृष्णिनन्दन श्रीकृष्ण और अर्जुन की शरण में जाओ।[१९] द्रोणपर्व में षोडशराजकीयोपाख्यान के अन्तर्गत नारद जी द्वारा राजा सृंजय को मृत्यु की उत्पत्ति और उसके अनुपम कर्म सुनाकर नैतिक कर्म के लिए प्रेरित करते हुए यह उपदेश

दिया गया कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है। अत: उसके लिए दु:ख नहीं करना चाहिए। विशेष रूप से जो पुण्यात्मा न हों, यज्ञ न करते हों, उनमें कोई उदारता न हो, दान-दक्षिणा न देते हों, कल्याणकारी सद्गुणों से रहित हों ऐसे व्यक्तियों के लिए कदापि शोक नहीं करना चाहिए।[२०]

शान्तिपर्व में राजधर्मानुशासन पर्व में विद्वान् सदाचारी पुरोहित की आवश्यकता तथा ब्राह्मण और क्षत्रिय में मेल होने के कारण लाभ विषयक राजा पुरूरवा के उपाख्यान द्वारा यह बताने का प्रयास किया गया है कि ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर फूट होने से प्रजा को दु:सह दु:ख उठाना पड़ता है। अत: यह राजा का नैतिक कर्तव्य है कि वह सदाचारी ब्राह्मण को पुरोहित बना ले क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय आपस में मिलकर एक-दूसरे की रक्षा करने में समर्थ होते हैं।[२१] जैसे महान् एवं अगाध समुद्र में टूटी हुई नौका पार नहीं पहुँच पाती उसी प्रकार उस अवस्था में मनुष्य (ब्राह्मण क्षत्रिय) अपनी जीवन यात्रा को कुशलपूर्वक पूर्ण नहीं कर पाते हैं। अत: राजा को हमेशा अपना परामर्शदाता ऐसे ही योग्य और विद्वान् व्यक्ति को रखना चाहिए जो सत्चरित्र एवं नीतिज्ञ हो।[२२]

महाभारत में सामाजिक नैतिक मूल्य का उदाहरण भी हमें पग-पग पर प्राप्त होता है। आदिपर्व में गरुड़ द्वारा अपनी माता विनता को दासी भाव से मुक्त कराने के लिए कद्रू पुत्रों की दुष्टता तथा कपटपूर्ण व्यवहार के कारण अमृत को सर्पों के सामने कुशों पर रखकर उनको स्नान और मंगल कर्म करके अमृत का पान करने के लिए सलाह देकर अपनी माता को दासीपन से मुक्त कराने का वर्णन है।[२३] साथ ही यह भी निश्चित करना कि अमृत कद्रू पुत्रों सर्पों को न मिले यह सामाजिक नैतिक मूल्य को दर्शाता है। प्राचीन काल से आ रही ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋण की ये त्रिऋण परम्परा के अन्तर्गत गरुड़ ने अपनी माता को दासत्व भाव से मुक्त कराया तथा स्वयं भी मातृ ऋण से उऋण भी हुए। देवराज इन्द्र को सर्पों से अमृत प्राप्त का उपाय बताकर देवऋण से भी मुक्त हुए। भारतीय संस्कृति में माता सर्वोपरि है। पुत्र का कर्तव्य है कि वह माता को समस्याओं से मुक्त करे। यही कारण है कि गरुड़ द्वारा माता के प्रति किया गया कार्य आज भी उपादेय और अनुकरणीय है।

आस्तीक पर्व में महातपस्वी आस्तीक वेद वेदांगों के निष्णात विद्वान् और सभी जनों के प्रति समभाव रखने वाले तथा मातृ-पितृ कुल के भय को दूर करने वाले थे।[२४] उन्होंने पाण्डववंशीय नरेश जनमेजय द्वारा सर्पों के संहार के लिए प्रारम्भ किए गए सर्पसत्र नामक महान् यज्ञ में उपस्थित होकर सर्पों को मौत के मुँह से छुड़ाया तथा तपस्या और सन्तानोत्पादन द्वारा पितरों का उद्धार किया। भाँति-भाँति के व्रतों तथा स्वाध्यायों का अनुष्ठान करके सब प्रकार के ऋणों से उऋण हो गए।[२५]

इस प्रकार आस्तीक जैसे पुत्र एवं परमधर्म की प्राप्ति करके जरत्कारु पितृऋण से उऋण हुए।

आदिपर्व के अन्तर्गत सम्भव पर्व में पुरुवंश का विस्तार करने वाले राजा दुष्यन्त जो महापराक्रमी तथा चारों समुद्रों से घिरी हुई समूची धरिणी के पालक थे।[२६] दुष्यन्त के पिता का नाम राजर्षि महात्मा इलिल/ईलिन था।[२७] दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में गए जहाँ सदाचारी व्रतपालक तपस्वी रहते थे। वहाँ एक अभूतपूर्व सुन्दरी शकुन्तला नामक कन्या से उनकी भेंट हुई। शकुन्तला पर आसक्त होकर दुष्यन्त ने उससे प्रणय निवेदन करते हुए गान्धर्व विवाह का प्रस्ताव रखा।[२८] कालान्तर में जब शकुन्तला राजमहल में गयी तो उसने दुष्यन्त से कहा कि आप दूसरों के सरसों के समान दोषों को तो देख लेते हैं परन्तु अपने वृषभ के समान बड़े-बड़े दोषों को भी देखकर नहीं देखते। सौ कुएँ खुदवाने की तुलना में एक बावड़ी का निर्माण करवाना श्रेष्ठ है, सौ बावड़ियों की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना उत्तम है, सौ यज्ञ की अपेक्षा एक पुत्र को जन्म देना श्रेष्ठ है और सौ पुत्रों की अपेक्षा सत्य धर्म का पालन करना श्रेष्ठ है।[२९] इसी प्रकार हजार अश्वमेध यज्ञों की तुलना में सत्य का पक्ष सदैव भारी होता है।[३०] सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन और समस्त तीर्थों का स्नान करने की अपेक्षा सत्य श्रेष्ठ है।[३१] सत्य परब्रह्म का स्वरूप है। शकुन्तला के ऐसा कहने पर राजा दुष्यन्त ने हर्षित और आनन्दित होकर अपने पुत्र भरत को स्वीकार कर लिया तथा अपनी माता रथन्तर्या को बताया कि यह मेरा पुत्र है जो वन में उत्पन्न हुआ है।[३२] यह तुम्हारे शोक का नाश करने वाला होगा। तुम्हारे इस पौत्र को पाकर मैं आज इस पितृऋण से उऋण हो गया। भरत से ही इस भूखण्ड का नाम भारत हुआ। यह आख्यान भी सामाजिक नैतिक मूल्यों पर अवलम्बित है।

इसी प्रकार राजा सगर का संतान के लिए तपस्या करना और शिवजी के द्वारा वरदान देना, सगर के पुत्रों की उत्पत्ति, साठ हजार सगर के पुत्रों का कपिल मुनि की क्रोधाग्नि से भस्म होना, अंशुमन के प्रयत्न से सगर के यज्ञ की पूर्ति, अंशुमान से दिलीप को और दिलीप से भगीरथ को राज्य की प्राप्ति तथा भगीरथ का हिमालय पर तपस्या द्वारा गंगा को धरा पर लाने का वर्णन है। भगीरथ ने गंगा की प्रेरणानुसार पितरों को स्वर्गलोक की प्राप्ति कराने के उद्देश्य से महादेव से गंगा के वेग को धारण करने की याचना की।३३ जाह्नवी को धरित्री पर लाकर पितरों को जलदान किया और पितरों का उद्धार करने में भगीरथ का मनोरथ सफल हुआ और वे पितृऋण से मुक्त हुए।[३४]

उद्योग पर्व में विदुला उपाख्यान के अन्तर्गत विदुला का रणभूमि से भागकर आए हुए अपने पुत्र की भर्त्सना कर पुनः युद्ध के लिए उत्साहित करते हुए यह कहना कि तू मेरी कोख से पैदा नहीं हुआ अतः क्षत्रियों में गणना करने योग्य नहीं है।

तुम मात्र कहने के लिए पुरुष है अन्यथा तुम्हारे मन आदि सभी क्लीबों के समान हैं।[३५] विदुला उसे सम्बल देते हुए कहती है कि तुम स्वयं की अवहेलना न करो और धैर्य एवं स्वाभिमान का अवलम्बन कर अपने पुरुषार्थ को जान और तेरे कारण डूबी हुई अपने इस वंश का तुम स्वयं ही उद्धार करो।[३६] दान, तपस्या, सत्यभाषण, विद्या एवं धनोपार्जन में जिसके सुयशा का सर्वत्र बखान नहीं होता है, वह पुरुष अपनी माता का पुत्र नहीं, मल-मूत्र मात्र ही है।[३७] जो शास्त्र ज्ञान, तपस्या, धन सम्पत्ति अथवा पराक्रम के द्वारा दूसरे लोगों को पराजित कर देता है, वह उसी श्रेष्ठ कर्म के द्वारा पुरुष कहलाता है।[३८] जो मनुष्य अपने बाहुबल का आश्रय लेकर उत्कृष्ट जीवन व्यतीत करता है, वही इस लोक में उत्तम कीर्ति और परलोक में शुभ गति पाता है। इस उपाख्यान से यह प्रतीत होता है कि विदुला स्वयं वीरांगना थी और उसके अन्त:करण में क्षात्रशक्ति का संचार होता था वह अपनी सन्तति को भी शौर्यता, ओजस्विता, तेजस्विता वा वीरता के गुणों से ओत-प्रोत देखना चाहती थी। यहाँ यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि माँ चाहे तो अपनी सन्तति को उत्तम संस्कार देकर श्रेष्ठ नागरिक, देशभक्त व उत्तम गुणसम्पन्न बना सकती है।

वस्तुत: महाभारत में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण प्राप्त होता है। महाभारत के आख्यानों एव उपाख्यानों में पग-पग पर सामाजिक आदर्शों, नैतिक मूल्यों का आदि का विवेचन मिलता है। प्रस्तुत शोध पत्र में संक्षेप में इन आख्यानों एवं उपाख्यानों के अन्तर्गत विवेचित नीति मीमांसा का विवेचित करने का प्रयास किया गया है।

- असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. शिवानन्द नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग, चमोली (उत्तराखण्ड)।

---

१. लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश, सम्पादक आचार्य रामचन्द्र वर्मा, पृ. 679

२. अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीर: कुर्वीत वा न वा॥ महाभारत उद्योगपर्व, 34/9

३. भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो बडिशमायसम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते॥ महाभारत उद्योगपर्व, 34/13

४. किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वत:।
इति कर्माणि संचिन्त्य कुर्याद् वा पुरुषो न वा॥
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारक:॥ महाभारत उद्योगपर्व, 34/18-19

५. रथ: शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाव्यस्य चाश्वा:।

तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥ महाभारत उद्योगपर्व, 34/59

६. कठोपनिषद् 3/3

७. वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
प्राप्तकालं तु विज्ञाय भिन्द्याद् घटमिवाश्मनि॥ महाभारत, शान्तिपर्व, 140/18

८. विषमावस्थिते दैवे पौरुषेऽफलतां गते।
विषादयन्ति नात्मानं सत्वोपाश्रयिणो नराः॥ महाभारत, वनपर्व 79/14

९. अस्थिरत्वं च संचिन्त्य पुरुषार्थस्य नित्यदा।
तस्योदये व्यये चापि न चिन्तयितुमर्हसि॥ महाभारत, वनपर्व 79/12

१०. जित्वा तु पृथिवीं दैत्यौ निःसपत्नौ गतव्यथौ।
कृत्वा त्रैलोक्यमव्यग्रं कृतकृत्यौ बभूवतुः॥ महाभारत, आदिपर्व 211/1

११. मदकामसमाविष्टौ परस्परमथोचतुः। महाभारत आदिपर्व 211/15

१२. सद्भिः सदाध्यासितं तु प्रशस्तं तस्मात् प्रशस्तं श्रयते मतिर्मे।
एतन्महाभाग्वरं शिबेस्तु तस्मादहं वेद यथावदे तत्॥ महाभारत वनपर्व 198/27

१३. महाभारत, रामोपाख्यान पर्व, अध्याय 274-291

१४. महाभारत. उद्योग पर्व, (भगवाद्यान पर्व), अध्याय 97-105

१५. प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान् मतो मम।
अन्ततं वा वदेद् वाचं न तु हिंस्यात् कथंचन॥ महाभारत कर्णपर्व, 69/23

१६. भवेत् सत्यं भक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चत्य ततो भवति धर्मवित॥ महाभारत, कर्णपर्व, 69/35

१७. महाभारत, कर्णपर्व अध्याय, 69/59-60

१८. उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्तराष्ट्रैर्न संशयः।
सदृशाञ्श्रेयसश्चापि सर्वान् कर्णावमन्यसे॥ महाभारत, कर्णपर्व, 41/71,72

१९. यथाश्रयत चक्राङ्ग वायसो बुद्धिमास्थितः।
तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनंजयम्॥ महाभारत, कर्णपर्व, 41/82

२०. महाभारत, द्रोणपर्व अध्याय 55-70

२१. एतौ हि नित्यं संयुक्ताविवरेतरधारणे।
क्षत्रं वै ब्रह्मणो योनिर्योनिः क्षत्रस्य वै द्विजाः॥ महाभारत, शान्तिपर्व 73/11

२२. नात्र पारं लभते पारगामी महागाधे नौरिव सम्प्रपन्ना।
चातुर्वर्ण्यं भवति हि सम्प्रमूढं प्रजास्ततः क्षयसंस्था भवन्ति॥ महाभारत, शान्तिपर्व 73/13

२३. आदिपर्व, 34/12.13, 17/19

२४. तपस्वी च महात्मा च वेदवेदाङ्गपारगः।
समः सर्वस्य लोकस्य पितृमातृभयापहः॥ महाभारत, आदिपर्व, 15/4

२५. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 15/5,6

२६. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 68/3

२७. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय 71/8

२८. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय, 73/14

२९. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय, 74/102

३०. अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥ महाभारत, आदिपर्व, 74/103

३१. सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम्।
सत्यं च वचनं राजन् समं स्यान्न वा समम्॥ महाभारत, आदिपर्व, 74/104

३२. स मातरमुपस्थाय रथन्तर्याम भाषत।
मम पुत्रो वने जातस्तव शोकप्रणाशनः॥
ऋणादद्य विमुक्तोऽहमसि पौत्रेण ते शुभे।
विश्वामित्रसुता चेयं कण्वेन च विवर्धिता॥ महाभारत, आदिपर्व, 74/126

३३. अगृह्याच्च वरं तस्माद् गङ्गाया धारणे नृप।
स्वर्गे वासं समुद्दिश्य पितृणां स नरोत्तमः॥ महाभारत, वनपर्व, 108/27

३४. पितृणां चोदकं तत्र ददौ पूर्णमनोरथः।
एतत् ते सर्वमाख्यातं गङ्गा त्रिपथगा यथा॥ महाभारत, वनपर्व, 109/19

३५. निर्मन्युश्चाप्यसंख्येयः पुरुषः क्लीबसाधनः।
यवज्जीवं निराशोऽसि कल्याणाय धुरं वह॥ महाभारत, उद्योगपर्व 133/6

३६. कुरु सत्वं च मानं च विद्धि पौरुषमात्मनः॥ महाभारत, उद्योगपर्व, 133/21

३७. दाने तपसि सत्ये च यस्य नोच्चरितं यशः। महाभारत, उद्योगपर्व, 133/23

३८. विद्यामर्थलाभे व मातुरुच्चार एव सः।
श्रुतेन तपसा वापि श्रिया व विक्रमेण वा॥ महाभारत, उद्योगपर्व, 133/24

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

पारिवारिक व्रत एवं आचरण

- सत्यदेव सिंह

अनुव्रतः पितुः पुत्रो माता भवतु संमना।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

(अथर्ववेदः ३/३०/२)

अन्वय-पुत्रः पितुः अनुव्रतः भवतु। पुत्रः माता सह संमनाः भवतु। जाया पत्ये मधुमतीं शान्तिवां वाचं वदतु।।

अर्थ-(पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का (अनुव्रतः) अनुव्रत हो अर्थात् उसके व्रतों को पूर्ण करे। पुत्र (माता) माता के साथ (संमनाः) उत्तम मनवाला (भवतु) हो अर्थात् माता के मन को संतुष्ट करने वाला हो। (जाया) पत्नी को चाहिए कि वह (पत्ये) पति के साथ (मधुमतीम्) मीठी और (शान्तिवाम्) शान्तिप्रद (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

व्याख्या-इस वेदमंत्र में वे आरम्भिक साधन बताये हैं जिनसे एक गृहस्थ सुव्यवस्थित रह सकता है। ऊपरी दृष्टि में ऐसा लगता है कि जिन बातों का इस मन्त्र में प्रतिपादन है वे अतिसाधारण हैं। उनको अनपढ़ और अशिक्षित लोग भी समझते हैं। उनके लिए वेदमंत्र का आवश्यकता नहीं। परन्तु गम्भीर दृष्टि से पता चलेगा कि बहुत-सी बातें विचारणीय और ज्ञातव्य हैं। उदाहरण के लिए दो शब्दों पर विचार करते हैं-एक-'पुत्र' और दूसरा 'अनुव्रत'। यहाँ केवल इतनी ही बात नहीं है कि सन्तानों को मां-बाप की सेवा करनी चाहिए और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिए। यद्यपि जिस किसी ने संसार में सबसे पहले लोगों को यह उपदेश किया होगा, उस समय इतनी छोटी-सी बात भी बहुत बड़ी और अद्‌भुत मालूम होती होगी। आज भी यद्यपि कथन मात्र से इस बात को सभी जानते हैं फिर भी व्यवहार में तो अत्यन्त न्यूनता दिखाई देती है। आज्ञाकारी राम तो कथाओं का ही विषय हैं। व्यवहार में तो जिन घरों में हिरण्यकश्यपु नहीं हैं वहां भी किसी न किसी बहाने से सन्तान प्रह्लाद का स्वाँग खेलने के लिए उत्सुक रहती है। कुछ ऐसे भी मनचले हैं जो ऐसी शिक्षाओं को असामयिक और प्राचीनकाल की दास-प्रथा का प्रतीक समझते हैं। बेटा बाप की आज्ञा क्यों मानें? इस प्रकार प्राचीन आचार शास्त्र के बहुत से छोटे-छोटे नियम हैं जो आजकल भावी विकास में बाधक समझे जाते हैं। यूँ तो हर मानवीय संस्था में समय-समय पर दोष आ जाया करते हैं और उनके सुधार की आवश्यकता होती है। यदि संसार के सभी पिता हिरण्यकश्यपु बन जायें तो ऐसी संस्थाएँ भी प्रशंसा की सृष्टि से देखी जायेंगी, जो

बालकों में प्रह्लाद् की भावनाओं का प्रसार करें, **क्योंकि परिवार का संगठन तो तभी सुरक्षित रह सकता है जब पिता और पुत्र दोनों धार्मिक हों।** कोढ़ी माँ-बाप की सन्तान को उनसे अलग रखा जाता है कि वह कोढ़ दूसरी पीढ़ी में भी न आ जाए। चोर और डाकुओं की सन्तान को भी पृथक् करने की आवश्यकता होती है। परन्तु ये तो अपवाद मात्र हैं। यह साधारण जीवन का आचार शास्त्र नहीं, अपितु आचार सम्बन्धी अस्पतालों की नियमावली है, जो सामान्य जीवन से कुछ भिन्नता रखती है।

अच्छा! आइये पहले 'अनुव्रत' शब्द पर विचार करें। इसके लिए देखना यह है कि सृष्टिक्रम में सन्तानोत्पत्ति की व्यवस्था क्यों रखी गई? यदि कोई परिवार सन्तानहीन ही लुप्त हो जाए तो क्या हानि है? और यदि एक क्षण में समस्त संसार नष्ट हो जाए तो किसका क्या बिगड़ेगा? परन्तु ये प्रश्न वे ही कर सकते हैं जो जीव की स्वतन्त्र सत्ता और उसकी आवश्यकताओं पर विचार नहीं करते। परमात्मा ने यह सृष्टि खेल के लिए नहीं बनाई। यह जीव के विकास के लिए बनाई गई है। दुर्गुणों से बचने और सद्गुणों को ग्रहण करने के लिए बनाई गई है। पशु-पक्षियों की बुद्धि इतनी कम है कि उनके आचार की व्यवस्था ईश्वर ने सीधी अपने हाथ में रखी है। जैसे, बहुत छोटे बालकों पर बुद्धिमान पिता उनकी व्यवस्था का भार नही छोड़ता, परन्तु विद्वान् और परिपक्व सन्तान अपना विधान आप बनाने में स्वतन्त्र होती है। यही प्रथा पशु-पक्षियों की है। 'मधुमक्खी' को छत्ता बनाने, या 'बया' को घोंसला बनाने के लिए किसी इंजीनियरिंग कॉलेज की आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु मनुष्य का बच्चा तो मुंह धोने का नियम भी रखता है। अत: स्पष्ट है कि मानवजाति के लिए एक आचार शास्त्र चाहिए जो परम्परा से चालू रहे। इसी का नाम 'व्रत' है। जब यज्ञोपवीत दिया जाता है तो एक मन्त्र पढ़ते हैं-

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।
इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि।।(यजुर्वेद२/५)

अर्थात् मैं एक व्रत करता हूँ। परमात्मा इस व्रत के पालन में मेरी सहायता करें। वह व्रत क्या हैं? उत्तर-अनृतात् सत्यमुपैमि। असत्य का त्याग और सत्य को विशेष स्थान दिया है। इस नियम पर प्रत्येक मनुष्य के विकास का आधार है। महात्मा गाँधी का समस्त जीवन सत्य की खोज और उसके पालन में व्यतीत हुआ। जिसने सत्य की खोज नहीं की, वह सत्य का पालन क्या करेगा? जो लोग श्रद्धा का अर्थ लेते हैं सत्य की खोज से संकोच और प्रचलित प्रथाओं या गुरुजनों पर अन्धविश्वास, वे श्रद्धा शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थों से अनभिज्ञ हैं। 'श्रद्धा' शब्द दो शब्दों की सन्धि से बनता है, 'श्रत्' अर्थात् सत्य और 'धा' अर्थात धारण करना। अत: श्रद्धा का भी वही अर्थ है जो 'अनृतात् सत्यमुपैमि' का। प्रत्येक बच्चे को यह व्रत लेना पड़ता है और यह आशा की जाती है कि बालक आयु पर्यन्त इसका पालन करे।

मानवजाति के कल्याण के लिए यह आवश्यक है और हर गृहस्थ को यह व्रत लेना चाहिए।

परन्तु यह परम्परा तो तभी चल सकती है, जब भावी सन्तान पूर्वजों के व्रत का आदर करे। इसीलिए कहा है कि पुत्र को पिता का '**अनुव्रत**' होना चाहिए। यह दायभाग में सबसे बड़ी सम्पत्ति है, जो कोई पिता अपने पुत्र के लिए या कोई आचार्य अपने शिष्य के लिए छोड़ सकता है। 'अनुव्रत' का प्रश्न तो तभी उठेगा जब व्रत होगा। माता-पिता के जो आचरण आकस्मिक या स्वाभाविक रूप से इस व्रत के अन्तर्गत नहीं, वे अनुपालनीय भी नहीं। इसीलिए गुरु उपेदश देता है कि हमारे जो जो सुचरित हैं वे ही पालनीय हैं (नो इतराणि) अन्य नहीं। व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं, अपितु वैदिक संस्कृति ही प्रत्येक माता-पिता को करणीय और प्रत्येक पुत्र या पुत्री को अनुकरणीय है।

अब 'पुत्र' शब्द के अर्थों पर विचार करते हैं। हर बच्चा जो उत्पन्न होता है वह पुत्र कहलाने के योग्य नहीं। शास्त्र के विधान से उसको पुत्र बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। सन्तान के लिए संस्कृत में अनेक पर्याय हैं, जैसे-**तुक्, तोकं, तनयः, तोक्म, तक्त, शेष, अप्नः गयः जा, अपत्यं, यहुः, सूनुः नपात्, बीजम्** इति पंचदश अपत्यनामानि (निघण्टु २/२)। परन्तु पुत्र का एक विशेष अर्थ है। **यास्काचार्य ने निरुक्त में** पुत्र शब्द की यह व्युत्पत्ति दी है '**पुत्+त्र**'। '**पुत**' नाम है 'नरक' का। अर्थात् **नरक से जो रक्षा करे उसे पुत्र कहते हैं**। मनुस्मृति में भी यही कहा है-

''पुंनाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः। तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा। पौत्रदौहित्रयोर्लोके विशेषो नोपपद्यते। दौहित्रोपि ह्यमुत्रैनं संतारयति पौत्रवत्।। (मनुस्मृति १/१२८,१३९) '**पुत्**' अर्थात् नरक से जो तारे वह है-**पुत्र**। पुत्र के अन्तर्गत लड़के और लड़की तो आते ही हैं, इनके लड़के/ लड़कियाँ भी आते हैं, क्योंकि 'पुत' अर्थात् नरक से तारने वाले हैं।

यह नरक त्राण क्या है?, इस पर विचार करना चाहिए। पौराणिकों ने नरक को एक स्थान विशेष माना है, जहाँ पापी लोग जाते हैं और यदि पुत्र मृतकों का श्राद्धतर्पण करता है तो उसके पितृगण नरक से छूटकर स्वर्ग में चले जाते है कि पुत्र पिता को नरक से कैसे छुड़ाता है? इसका उत्तर यह है कि-'कोई मनुष्य एक जन्म में पूर्ण विकास या परमपद को प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिए जन्म-जन्मान्तर का अभ्यास आवश्यक है। यह पुनर्जन्म के द्वारा होता है। जो आज बाप कहलाता है, वह कल बेटा हो सकता है। जिसको अगली पीढ़ी कहते हैं वह पिछली पीढ़ी हो जायेगी और अगली पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा का भार उसी पीढ़ी पर होगा। आज मैं और मेरे समवयस्क पितृश्रेणी में है। उनके सन्तान की

शिक्षा का भार है। कल हम मरकर बच्चे होंगे और जिनको हम पुत्र-पौत्र कहते हैं, वे पितृगण कहलायेंगे और हमारी शिक्षा का भार उन पर होगा। यह पिता-पुत्र का सम्बन्ध अनादि काल से प्रवाह-चक्र के समान चला आता है।'

'यदि हमारी सन्तान ने हमारी सुरक्षित संस्कृति को अपने हाथ में लेकर उसे समुन्नत किया तो वह समुन्नत संस्कृति हमारे दूसरे जन्म में हमारी सहायक होगी और इस प्रकार हमारे वर्तमान पुत्र अपने सुकर्मों के द्वारा हमारे कर्म और विकास के लिए उत्कृष्ट क्षेत्र छोड़ सकेंगे। इसी का नाम है नरक त्राण या पुत् नामक नरक से रक्षा। प्रत्येक अतीत पीढ़ी के जीवात्मा अगले जन्म में भावी बन जाते हैं और उनको अपनी पिछली पीढ़ी वालों के निर्मित क्षेत्र की अपेक्षा और आकांक्षा होती है।'

एक दृष्टान्त लीजिए। आज हमारे पुत्रों ने अपनी योग्यता से देश-देशान्तरों में वैदिक परम्पराओं और वैदिक संस्कृति का प्रचार कर दिया। जब हमने दूसरा जन्म लिया तो ये परम्पराएँ उस जन्म में हमारी सहायक होंगी। यदि हमारी सन्तान की भूलों से वैदिक परम्पराएं नष्ट हो गईं तो हम ऐसी दुनिया में जन्म लेंगे जो अवैदिक और प्रतिकूल होंगी, अत: हमें बड़ी कठिनाई होगी। यही 'नरक' है।

कल्पना कीजिए कि आप एक बाग लगाते हैं और उसका निरीक्षण अपने लड़कों पर छोड़कर चार वर्ष के लिए विदेश चले जाते हैं, अब यदि आपके लड़के योग्य हैं तो बाग का विकास करेंगे और जब आप विदेश से लौटेंगे तो बाग अच्छा मिलेगा। परन्तु यदि सन्तान ने प्रमाद किया और बाग उजड़ गया तो आपको नये सिरे से काम करना पड़ेगा। यही स्वर्ग और नरक है और यही आपके विकास में साधक या बाधक है। महर्षि स्वामी दयानन्द से पूर्व की सैकड़ो पीड़ियों के लोग यदि समझते कि अपने पूर्वजों के नरक-त्राण की दृष्टि से वैदिक धर्म का लोप न होने दें, तो महर्षि दयानन्द को फिर से वैदिक धर्म का पुनरुद्धार करने का कष्ट न उठाना पड़ता और उनका जीवन आरम्भिक कक्षा की शिक्षा देने के स्थान में उच्च कक्षा की शिक्षा देने में काम आता।

कल्पना कीजिए कि, मैं मरकर अरब में पुनर्जन्म लूँ तो वहाँ अवैदिक इस्लाम का प्रचार पाऊँगा और अपने पूर्वजन्म के संस्कारों के प्राबल्य के आधार पर यदि वैदिक जीवन व्यतीत करना चाहूँ तो कितनी कठिनाई होगी। परन्तु यदि इस पीढ़ी में वहाँ वैदिकधर्म का प्रचार हो जाए तो मुझे कितनी सुविधा होगी। वैदिक संस्कृति में पले हुए वैदिकव्रतों के व्रती पिताओं के पुत्रों का कर्त्तव्य है कि अपने पितृगण के भावी क्षेत्र को अनुकूल बनाने के लिए पिताओं के अनुव्रत हों। इस प्रकार वे अपने और अपने पीछे आने वालों के लिए क्षेत्र तैयार कर सकेंगे। व्यक्ति तो मर चुकते

हैं परन्तु संस्कृतियाँ बनी रहती हैं। **कुलों की सन्तति, राज्यों की सन्तति और धन-सम्पत्ति को स्थिर या चिरस्थायी बनाने हेतु लोग सन्तान चाहते हैं।** संस्कृति की सन्तति मुख्य चीज है। वही साध्य है और सन्तान उस सन्तति का साधन है।

आगे मन्त्र में कहा है कि पुत्र को 'मात्रा-संमना'=माता के साथ समान मन वाला होना चाहिए। माता प्रेम की निधि है। माता से अधिक प्रेम तो कोई करता ही नहीं और प्रेम एक प्रकार का **'गोंद'** है, जिससे अनैक्य में ऐक्य उत्पन्न होता है, स्वार्थ में परमार्थ आता है। प्रेम से दानवता में मानवता का संचार होता है। अत: अपने मानसिक विकास का सबसे बड़ा साधन है-'माता के स्नेह को स्मरण रखना'। माता का कृतज्ञ होना ही मनुष्य के आत्म-निर्माण की पहली सीढ़ी है।

मन्त्र के अन्तिम चरण में आया है-'जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्, अर्थात् पत्नी के लिए उपदेश है कि पति के साथ मीठी और शान्तिप्रद वाणी बोलें। पुरुष स्वभाव से कुछ कर्कश होता है और स्त्री का स्वभाव कोमल होता है। पुरुष दाँत है तो स्त्री जीभ है। जीभ और दाँत का सामीप्य है। कर्कशता और कोमलता का सम्मिलन है। समस्त शरीर में जहाँ नर्म माँसपेशियाँ हैं, वहाँ कठोर अस्थियाँ भी हैं। यदि हड्डियाँ ही होती, मांस नहीं होता तो शरीर का व्यापार कैसे चलता? शरीर शरीर न होता, पत्थर की चट्टान होता और पेशियाँ ही होती तो यह ढाँचा ही न होता, हम चल-फिर न पाते। अत: कठोर वस्तुओं को अपना धर्म पालने के लिए कोमल वस्तुओं से सामीप्य, सान्निध्य और साहाय्य की आवश्यकता होती है। जैसे कि मशीन को चालू रखने के लिए तेल की आवश्यकता होती है।

गृहस्थ के जटिल जीवन में पत्नी अपनी मधुरवाणी से कर्कशता को कोमल बनाए रखती है। जब पति बाहर के व्यापार से थका-मांदा झुंझलाया हुआ सायंकाल को घर लौटता है तो पत्नी मुस्कराते हुए अपनी मधुर वाणी से भारी थकावट दूर कर देती है। पत्नी वस्तुत: पत्नी अर्थात् **'पति की रक्षिका'** बन जाती है। यह आनन्द केवल वैवाहिक जीवन में ही प्राप्त हो सकता है, अन्यत्र नहीं। इसीलिए पत्नी को 'जाया' कहा। न केवल इसलिए कि उससे पुत्र उत्पन्न होगा जो उसके कुल और नाम को रोशन करेगा, यह तो गृहस्थ का एक स्थूल पक्ष है। परन्तु इसलिए भी कि पत्नी की मीठी बोली पति के लिए प्रतिदिन नये जीवन का संचार करती है। विवाह संस्कार के समय इसी बात को ध्यान में रखकर ऋग्वेद के इन तीन मन्त्रों को बोला-बुलवाया जाता है-

१) **मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धव:।**
माध्वीर्न: सन्त्वोषधी:।। (ऋ.

१/१०/६)

पदार्थ-**ऋतायते**=सत्याचरण वाले पुरुष के लिए, **वाता:**=वायुगण, **मधुक्षरन्ति**= मधुवर्षण करती हैं, **सिन्धव:**=सब नदियाँ, **मधु क्षरन्ति**=मिठास बहाती हैं, **न:**=हम उपासकों के लिए, **ओषधो:**=जौ, गेहूँ, चावल आदि सब अन्न, **माध्वी सन्तु**=मधुरता युक्त होवें।

भावार्थ-हे परमात्मन! जैसे सदाचारी पुरुष के लिए सब प्रकार के वायु और सब नदियाँ सुखदादिनी होती हैं वैसे ही आपके उपासक जो हम लोग हैं, उनके लिए भी सब प्रकार के वायु और अन्न सुख देने वाले होवें, जिससे हम सब लोग, आपकी भक्ति और आपकी आज्ञारूप वैदिक धर्म का सर्वत्र प्रचार कर सकें।

२) मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रज:।
मधु द्यौरस्तु न: पिता।।(ऋ. १/१०/७)

पदार्थ:-नक्तम् मधु=हमारे लिए रात्रि मधुर (मीठी) हो, **उत**=और, **उषस:**=प्रात:काल मधुर हो, पार्थिवं **रज:**=पृथिवी के ग्राम-नगर आदि, **मधुमत्**=माधुर्ययुक्त हों। न:=हमारे लिये, द्यौ:=वर्षा करने से सब जीवों का पालन करने वाला (पिता)। द्यौ (द्यलोक) भी, मधु अस्तु=मधुर हो, सुखप्रद हो।

भावार्थ-हे जगत् पिता परमात्मन्! हमारे लिये रात्रि प्रात: काल मधुवत् सुखदायक हों। सब नगर-ग्राम गृह आदि भी सुखद हों। हमारे ऊपर का द्युलोक, जो बरसात द्वारा हम सबका पालक होने से पिता रूप है, वह भी सुख देने वाला हो, मधुर हो।

३) **मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्य:।**
माध्वीर्गावो भवन्तु न:।।(ऋ. १/१०/८)

पदार्थ-न:=हमारे लिए, **वनस्पति: मधुमान् अस्तु**=वनस्पति मधुर हो, **सूर्य: मधुमान् अस्तु**= सूर्य भी हमारे लिये मधुमान् हो। **न: गाव:**=हमारी गौवें मिठास वाली, **भवन्तु**=होवें।

भावार्थ-हे परमेश्वर! हमारे लिए वनस्पतियाँ, सूर्य तथा गौशाला में गौ-ये सभी मधुर हो, सुखदायक हों।

इन तीनों वेद मन्त्रों में सुखपूर्वक जीवन-यापन करने हेतु परमपिता परमात्मा से कामना की गई है। ये सब मिठास ऋताचारी के लिये हैं। ऋत कहते हैं-सरल, सीधे और सृष्टि के अनुकूल व्यवहार को।

अत: प्रत्येक गृहस्थ को वेद के बाताये हुये मार्ग पर चलने का संकल्प लेना चाहिए, तभी सच्चे अर्थों में सुखी जीवन की सार्थकता है।

- -पता-५०७-गोदावरी ब्लॉक, अशोका सिटी, कृष्णा नगर, मथुरा (उ. प्र.) २८१००४

ISSN 0505-7523
विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

स्वामी रामतीर्थ के जीवनादर्श उनके 'पत्रों के दर्पण' में

- डॉ. विद्यानन्द 'ब्रह्मचारी'

संत-साहित्यकारों के व्यक्तित्व और कृतित्व को सही परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने के लिए जितनी सहायता उनके लिखे हुए तथा उनको लिखे गये पत्रों से मिलती है उतनी किसी भी साधन या साहित्य रूप से नहीं मिलती। इस दृष्टि से संत-साहित्यकारों द्वारा प्रेषित एवं प्राप्त पत्रों का ऐतिहासिक महत्त्व होता है।

पत्र को आधी मुलाकात की संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसी कारण, प्रसिद्ध संतों और साहित्यकारों का पत्र व्यवहार प्रकाश में आता रहा है और प्रकाशनोपरान्त साहित्य की स्थायी 'निधि' बन गया है।

व्यक्ति जिसे सीधे नहीं कह पाता, वह पत्रों में स्वत: अभिव्यक्त हो जाता है, जिससे पाठक को पत्र-लेखक की मन: स्थिति का सहज ही ज्ञान होता है। पत्र उसके अंत:करण और चिन्तन के दर्पण होते हैं जिनके माध्यम से पत्र-लेखक के अंतरंग और बाह्य दोनों रूपों का दर्शन किया जा सकता है। इसलिए विशिष्ट व्यक्तियों, विचारकों, संतों, दार्शनिकों, साहित्यकारों, वैज्ञानिकों के पत्रों का महत्व स्वीकार किया गया है।

पत्र पारस्परिक संवाद प्रेषण का श्रेष्ठ साधन ही नहीं, अपितु कलात्मकता की दृष्टि से उच्च कोटि की साधना है। यह साधना भावी पीढ़ी के लिए प्रकाश-स्तम्भ का काम करती है।

तो हाँ, बंगला भाषा साहित्य में पं. ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर आशुतोष मुखर्जी, और स्वामी विवेकानन्द की पत्रावली इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी भाषा साहित्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. पद्मसिंह शर्मा, महाकवि पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी, महात्मा गाँधी, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, महर्षि मेंहीं परमहंसु, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, डॉ. भुवनेश्वर नाथ मिश्र 'माधव', डॉ. लक्ष्मी नारायण सुधांशु के अतिरिक्त 'बेटी के नाम पिता का पत्र' नेहरु द्वारा लिखे गए इन्द्रिरा जी को पत्र हैं। फिर मुंशी प्रेमचन्द साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. कमल किशोर गोयनका द्वारा सम्पादित 'दिनकर के पत्र' एवं शिव पूजन सहाय द्वारा प्रकाशित पत्र आदि

इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

संत-साहित्यकारों के जीवन-दर्शन का सहज रूप स्वच्छ दर्पण की तरह उनके पत्रों में देखने को मिल जाता है। सत्यत: मनुष्य अपनी निश्छल-निष्कपट विचारों की सहज अभिव्यक्ति अपने निजी पत्रों में ही करता है। इतना तो निर्विवाद है कि साहित्यिक और सामाजिक जीवन में पत्राचार का मनोवैज्ञानिक महत्व है, जिसका संबंध मानव के व्यक्तित्व विकास से जुड़ा हुआ है।

पत्र-साहित्य की समृद्धि के आलोक में भारत के अध्यात्म जगत के प्रकाण्ड विद्वान संन्यासी और गणितज्ञ संत तीर्थराम गोस्वामी [बाद में स्वामी रामतीर्थ] का नाम अत्यन्त लोकप्रिय है। छात्र जीवन में तीर्थराम गोस्वामी द्वारा लिखे गए पत्रों से संबंधित प्रस्तुत लेख के लेखक को भारत में पहली बार राष्ट्रभाषा हिन्दी में संत कवि स्वामी रामतीर्थ के जीवन, साहित्य और साधना पर शोध कार्य करने की प्रेरणा और महत्वपूर्ण जानकारी मिली। तीर्थराम जी ने अपने अल्पजीवन में जिस कठोर सत्य का साक्षात्कार किया, उन्हीं सत्यों को अपने पत्रों में उजागर किया है। उनके जीवन-दर्शन और साधना का सहज रूप स्वच्छ दर्पण की भांति उनके पत्रों में देखने को मिल जाता है।

संत कवि रामतीर्थ का पत्र-साहित्य:

गणितज्ञ संत स्वामीरामतीर्थ के जीवन की राम कहानी उनके द्वारा लिखित उर्दू भाषा में अपने परम पावन पूज्य गुरु धन्नाराम के नाम पत्रों में सन्निहित है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि स्वामी जी का पूर्वाश्रम नाम तीर्थराम गोस्वामी था। पिता हीरानन्द गोस्वामी की आर्थिक स्थिति शोचनीय होने के कारण अपने पुत्र रत्न तीर्थराम गोस्वामी को अपने परम स्नेही मित्र गुजरांवाला [अब पाकिस्तान] निवासी नैष्ठिक ब्रह्मचारी धन्ना भगत के यहाँ पढ़ने के लिये रख दिये थे। बचपन से ही तीर्थराम की बुद्धि निर्मल मणि के समान स्वच्छ थी। इन्होंने अपनी प्रतिभा, सुशीलता, चातुरी, क्षमता, नम्रता, निष्कपटता और गुरु भक्ति से गुरुदेव को मोहित कर लिया। गुरुदेव धन्ना भगत बड़े ही उदार हृदय थे। वह इन्हें पुत्रवत मानने लगे, इनकी विलक्षण प्रतिभा से अत्यनत प्रसन्न हुए।

सच तो यह है कि तीर्थराम जी पठनावस्था में बड़े ही परिश्रमी, शांत, सुशील, निस्पृह, निरहंकार, निर्भीक, निष्कलंक, निष्कपट, गुरु भक्त, सदाचारी, सच्चरित्र, दयालु, आज्ञाकारी और कुशाग्र बुद्धि थे। इस कारण यह धन्ना भगत के परम कृपा पात्र तथा वात्सल्य के भाजन थे। तीर्थराम के अंत:करण में गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धा भाव निहित था।

कहने की आवश्यकता नहीं कि वह 'कर्णाधार' सदगुरु ही हैं। उनकी कृपा से किसी समय में और कहीं भी उनका शरणागत भक्त

उनकी दया से खाली नहीं रहता है। सन्त सदगुरु की ऐसी अत्युत्तम पदवी के कारण स्वयं जगद्गुरुओं ने उनको अपने से श्रेष्ठ बतलाया है। 'राम चरितमानस' काव्य के यशस्वी रचयिता कवि तुलसीदास कहते हैं:-

गुरु बिन भवनिधितरइ न कोई।
जौं विरंचि शंकर सम होई।।

गुरु तीर्थ बड़ा उत्तम तीर्थ है। 'पद्म पुराण' में ऐसा वर्णित है। वे शिष्य के अज्ञानमय अंधकार का नाश करते हैं, अत: शिष्य के लिए गुरु ही सर्वस्व है।

१२ वर्ष की आयु में तीर्थराम हाई स्कूल की मिड्लकक्षा में पढ़ते थे। उन दिनों बाल विवाह का प्रचलन था। अत: तीर्थराम भी इससे अछूते न रह सके। इनका विवाह गुजरांवाला लिज के 'वैरोके' के ग्रामवासी पं. रामचन्द्र की पुत्री के साथ हो गया। विद्या व्यसनी तीर्थराम के निर्मल हृदय में भगत धन्ना के प्रति असीम श्रद्धा भक्ति और प्रेम था। यह बात विचारणीय है कि इस छोटी आयु में भी तीर्थराम जी को अपने गुरु जी के साथ कैसी तीव्र गुरु भक्ति थी। संयोग वंश तीर्थराम ससुराल गये थे। आप ने प्रथम बार अपनी लेखनी से प्रात: स्मरणीय परम पूज्य सद्गुरु भगत धन्नाराम को ग्राम वैरोके[१] से २४ मई, १८८६ ई. को उर्दू भाषा में पत्र लिखा। उन्होंने पत्र में लिखा है:-

'रहनुमा-ए-सालिकाँ व पेशवा-ए-आरिफाँ! सलामत!

[मुमक्षुओं के मार्ग दर्शक और ब्रह्मवेताओं के नेता व शिरोमणि! प्रणाम!

आप का कृपा-पत्र मुझे बद्दीकी के मेले से एक दिन पहले मिला था। उसमें लिखा था कि "हम मेले को आवेंगे," इस वास्ते मैं भी मेले को गया, मगर मुझे आप के दर्शन न हुए और यहाँ लिफाफे नहीं मिलते, इस वास्ते खत में देर हुई। आज केवल इस कार्ड निमित्त बजीराबाद आया हूँ और मैं तो यहाँ से ही आप के चरणों में उपस्थित हो जाता, परन्तु सदा किसी न किसी कारण से रुक गया। और, मैं यहाँ बड़ा उदास रहता हूँ और लाला रामचन्द्र साहब यहाँ नहीं हैं। आशा है कि आज कल आ जावेंगे। जब वह आयेंगे मैं वहाँ आ जाऊँगा और अगर कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करें।

आप का दास

तीर्थराम

४ दिसम्बर, १८९१ ई. के पत्र[२] में लिखा है कि 'परमात्मा का स्वरूप अद्भुत चमत्कारों का मजमुआ (समूह) है, संसार के सुख ऐसे हैं जैसे उस रात की पक्षी[३] का साया (छाया) जिसको कभी किसी ने देखा नहीं, मगर उसके आने की आवाज ही केवल सुनी है।'

फिर सत्संग और कुसंग के फल का परिचय देते हुए १६ मार्च, १८९४ ई. को पत्र में गुरु जी को लिखा-'सत्संग, उत्तम ग्रंथ और भजन कीर्तन, ये तीनों चीजें तीन लोकों का राजा बना देती है, और हमारा कुसंग परमेश्वर को हम से कुपित करवा देता है। जिनके कारण हम पर नाना

प्रकार के कष्ट आ जाते हैं। एकान्त सेवन और थोड़ा खाने से परमात्मा स्वयं आ कर हमारा संग अंगीकार करते हैं।'

२८ जून, १८९४ ई. के पत्र में उल्लेख किया गया है-'अभ्यास करने वाले और शुद्ध अन्त: करण वाले पुरुषों का मिलाप बड़े ही उत्तम कर्मों का फल होता है।'

२३ जून, १८९४ ई. के पत्र में इनकी आध्यात्मिक विकास पर प्रकाश पड़ता है। उन्होंने लिखा है -'वेदों का केवल पाठमात्र सुनने से मेरे चित्त की समाधि की दशा प्राप्त हो जाया करती है और अत्यन्त आनन्द की व्यवस्था आच्छादित हो जाती है। यह अति उत्तम कार्य है। ऐसे वेद पाठी पुरुष की सहायता करनी उचित हैं।'

७ अगस्त, १९९७ ई. के पत्र में मनुष्य देह की सफलता के विषय में इन्होंने लिखा, 'यदि व्यवहार काल में चलते-फिरते और सब काम करते हमारी वृत्ति ब्रह्माकार रहे और चित्त अर्शे आत्मा (उच्च अवस्था) के कभी नीचे न उतरे, तो धन्य है हमारा जीवन, नहीं तो मनुष्य देह निष्फल खो दिया।'

२५ अक्टूबर, १८९७ ई. को पिता जी को स्पष्ट शब्दों में लिख भेजा,'.....आप के पुत्र तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया। बिक गया राम के आगे। उसका अपना नहीं राह आज दीपमालिका को अपना तनहार दिया और महाराज को जी लिया। आप को धन्यवाद हो। अब जिस वस्तु की आवश्यकता हो, मेरे मालिक (स्वामी) से माँगो। तत्काल स्वयं देंगे या मुझ से भिजवा देंगे। पर, एक बार निश्चय के साथ आप उनसे माँगो तो सही। उन्नीस-बीस दिन से मेरे सारे काम बड़ी निपुणता से अब आप करने लग गए हैं, आप के क्यों न करेंगे। घबराना ठीक नहीं। जैसी आप की आज्ञा होगी, वैसा वर्ताव में आता जायेगा। महाराज ही हम गुसाईयों के धन हैं। अपने निज के सच्चे और अमूल्य धन को त्यागकर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे पड़ना हमको उचित नहीं। और, उन कौड़ियों के न मिलने पर शोक करना तो बहुत बुरा है। अपने वास्तविक धन और सम्पत्ति का आनन्द एक बार लेकर तो देखो।'

इस पत्र की इनके पिता के मन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, वह इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है, जो उपरोक्त पत्र के साथ लिख कर भगत धन्नाराम जी के पास भेजे गए थे, 'भगत जी! आप की संगत से आज टब्बर नूँ अर्थात् सारे कुटुम्ब को जबाब मिला है। हमने आप को बुद्धिमान समझकर इस को आप के सुर्पुद किया था। पर यह परिणाम निकला.....।'

स्वामी जी के उपरोक्त पत्रों के अवलोकन, चिन्तन से ज्ञात होता है कि उनके अंत:करण में 'ब्राह्मी स्थिति' का परिचय स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

ब्राह्मी स्थिति उसे कहते हैं जब व्यक्ति को

ब्रह्म की स्थिति प्राप्त हो जाय, जीव शिव बन जाय, नर नारायण बन जाय, जीव ब्रह्ममय हो जाय। इसी स्थिति को 'भूमा स्थिति' भी कहते हैं।

छायावादी और शिवभक्त महाकवि श्री जयशंकर प्रसाद जी ने 'कामायनी' महाकाव्य में इसी को 'समत्व की स्थिति' 'शिवा स्थिति' या कैलास कहते हैं-

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था।
चेतनता एक निलसती, आनन्द अखण्ड घना था।।

कामायनी, आनन्दसर्ग

महर्षि व्यास जी ने 'गीता' के अध्याय-२, श्लोक ७०,७१,७२ में ब्रह्म स्थिति का उल्लेख किया है।

उल्लेखनीय है कि तीर्थराम जी अपने गुरु धन्ना भगत जी को अपनी अमृतमयी समर्थ लेखनी से २४ मई, १८८६ ई. से लेकर ९ जनवरी, १९००ई तक उर्दू और हिन्दी भाषा में पत्र लिखते रहे। इस अवधि में उन्होंने१११३ पत्र लिखे थे। १९ अक्टूबर, १८८८ ई. से जुलाई, १८८९ ई. तक लगभग सारे पत्र हिन्दी भाषा में लिखे हुए हैं, जिनकी संख्या ११४ है। छिटपुट रूप से कुछ पत्र अंग्रेजी भाषा में भी उपलब्ध हैं।

तो हाँ, स्वामी जी की आज्ञा से श्री नारायण स्वामी जी द्वारा देवप्रयाग से ३ जनवरी, १९०६ ई. के पत्र हाथों हाथ भगत जी को दिया गया। इस प्रकार स्वामी जी ने अपने प्राण प्रिय गुरु को ११५ पत्र प्रेषित किये थे।

स्वामी रामतीर्थ की ३३ वर्ष में जल समाधि दिनांक १७-१०-१९०६ ई. के उपरान्त सन् १९११ ई. में उनके परम प्रिय विद्वान पट्ट शिष्य श्री नारायण स्वामी जी को ज्ञात हुआ कि स्वामी जी अपने पूर्वाश्रम के गुरु भगत धन्नाराम के नाम जो पत्र लिखे थे, वे सभी हस्तलिखित पत्र ११०० से ऊपर की संख्या में उपलब्ध हैं।

इतना मालूम होते ही श्री नारायण स्वामी तुरंत गुजरांवाला निवासी श्रीमान भगत धन्ना राम की सेवा में उपस्थित होकर स्वामी राम के पत्रों को देखने की उत्कट जिज्ञासा प्रकट की। बहुत टाल-मटोल के बाद अन्त में भगत जी कृपा पूर्वक एक मिट्टी का घड़ा सामने रख दिया जो पत्रों से लवालव भरा हुआ था। भगत जी उन पत्रों को अपने घर से बाहर ले जाकर पढ़ने की आज्ञा कदापि नहीं देते थे। अत एव वहीं उनके कक्ष के समक्ष सब पत्रों को वर्ष, मास और तिथि के अनुसार कई दिनों तक छाँटकर क्रमशः पढ़ना आरम्भ किया। उनमें से श्री नारायण स्वामी जी ने २७० पत्र प्रकाशनार्थ चुने।

इस तरह सन् १९१२ ई. में उर्दू भाषा में स्वामी राम के उक्त पत्र उनके प्रधान शिष्य नारायण स्वामी द्वारा सम्पादित हो सका।

लगभग १५ वर्ष हुए उर्दू में रामतीर्थ पत्र के हिन्दी अनुवाद का सम्पादन कार्य मेरे (नारायण स्वामी) सुपुर्द हुआ था, जिसे नवम्बर, १९२२ ई. में श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग, माखाड़ी गली,

लखनऊ ने प्रकाशित किया था।

पुनः श्रीरामतीर्थप्रतिष्ठान लखनऊ ने स्वामी जी के सभी पत्रों को सन् १९३७ ई. में प्रकाशित किया जो एक पत्र साहित्य के अन्तर्गत एक मूल्यवान और प्रामाणिक जीवनी साहित्य बन गया है।

इन पत्रों द्वारा आधुनिक भारत के महान् संत स्वामी रामतीर्थ के व्यक्तित्व और कृतित्व का सही आकलन मिलता है।

इस प्रकार ईश्वरोन्मत्त गणितज्ञ और व्यावहारिक वेदान्त के उपदेशक स्वामी रामतीर्थ जी के जीवनादर्श उनके पत्रों के सन्दर्भ में मुखर होते हैं। स्वामी जी के इन जीवनादर्शों से प्रभावित हो, उनके भक्त, प्रशंसक और प्रेमी अपने जीवन में स्थान देंगे। कारण, ऐसे ही महापुरुषों के विशेषतः सत्पुरुषों के जीवन-चरित्र स्वावलम्बन की शक्ति, स्थिर संकल्प, अटल कार्यानुष्ठान, अविचल साधुता आदि गुणों के बहुमूल्य दृष्टान्त प्रदर्शित करते हैं। इन्हीं गुणों के द्वारा यथार्थतः महान एवं मनुष्योचित चरित्र का निर्माण होता है और उनके उदाहरण स्पष्टाक्षरों में यह बतलाते हैं कि प्रत्येक मनुष्य में अपने लिये कितनी उन्नति करने की शक्ति सन्निहित है।

जब तक स्वामी जी के आदर्श जीवन और साहित्य को जीवन में नहीं उतारेंगे तब-तक उनका पत्र-साहित्य प्रगति विमुख बना रहेगा।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि हिन्दी सन्त-साहित्य के विलक्षण सन्त स्वामी रामतीर्थ जी के जीवनादर्शो को पत्रों के सन्दर्भ में सर्वाधिक मुखर किया जाए।

- रामतीर्थ कुंज, ग्राम+प्रो० राँकोडी, वाया-कोशी कॉलेज-८५१२०५
जिला-खगड़िया (बिहार)

---

१ वैरोके में तीर्थराम जी का खशुरालय[ससुराल] था। इस ग्राम से वजीराबाद डाकखाना लगभग तीन मील की दूरी पर है।

बाल्यावस्था में ही तीर्थराम जी का विवाह हुआ था, जब कि वह अपने ग्राम मुशली वाला से गुजरांवाले गये थे। और भगत जी को मिले अथवा गुरु गृह गये भी अभी थोड़ा समय ही हुआ था। फिर भी, वाह री गुरु भक्ति! जो उनकी बाल्यावस्था में भी इतनी उमड़ी कि केवल पोस्टकार्ड लिखने निमित्त तीर्थराम जी को इतनी दूर ले आई और बालक का भावुक हृदय व्याकुल होने लगा। इस व्याकुल मन का भाव को पत्र लिखकर प्रकट किया।

२ राम पत्र-ग्यारहवां भाग-स्वामी रामतीर्थ, पत्र १३१, पृ. ५५-५७

३ भगत धन्नराम जी से विदित हुआ कि प्रत्येक रात्रि वह नियत समय पर एक पक्षी के उड़ने की आवाज सुना करते थे; परन्तु बहुत यत्न करने पर भी वह पक्षी रात्रि के समय किसी को दिखाई नहीं देता था, यद्यपि उसके उड़ने की आवाज अवश्य सबको सुनाई देती थी। उस पक्षी के दृष्टान्त से तीर्थराम जी ने संसार से सुखों को दर्शाया है।

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

श्रीराम-वाल्मीकि का अतिशय पावन और सुन्दर संवाद

- शैलजा अरोड़ा

संत शिरोमणि तुलसीदास कृ त रामचरितमानस कहती है कि सुन्दरवन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्रीराम वाल्मीकि जी के आश्रम में आये। पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर प्रभु अत्यन्त हर्षित हुए और मुनि को दण्डवत प्रणाम किया। विप्र श्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया और सम्मानपूर्वक उन्हें आश्रम में ले आए। श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकि जी ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिए मधुर कंद, मूल और फल मंगवाये। श्रीसीता जी, लक्ष्मण जी और रामचन्द्र जी ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको विश्राम करने के लिए सुन्दर स्थान बतलाया। ये वो स्थान हैं जिनका ज्ञान होना जीवमात्र के लिए न केवल परमावश्यक है अपितु कल्याण का भी हेतु है।

मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि को अति प्रसन्नचित्त देखकर श्रीरघुनाथजी बोले-हे मुनिराज! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुन्दर पत्तों और घास की कुटी बनाकर कुछ समय के लिए निवास करूँ। वाल्मीकि जी ने हर्षित होते हुए कहा-हे प्रभो! आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी होते हुए भी मुझसे रहने का स्थान पूछ रहे हैं। परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ। मुनि के प्रेमरस में सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्र जी रहस्य खुल जाने के डर से सकुचाकर मन में मुस्कराए। वाल्मीकि जी हँसकर फिर अमृत रस में डुबोई हुई मीठी वाणी में बोले-हे राम जी! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ जहाँ आप, सीताजी और लक्ष्मण जी सहित निवास कीजिएगा। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुन्दर कथा रूपी अनेक सुन्दर नदियों से निरंतर भरते रहते हैं परन्तु कभी तृप्त नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुन्दर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शन रूप मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं, हे रघुनाथ जी, उन लोगों के हृदयरूपी सुखदायी भवनों में आप निवास कीजिए। आपके यशरूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूहरूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे राम जी! आप उसके हृदय

मे बसिए। जिसकी नासिका आपके पवित्र और सुगंधित सुन्दर प्रसाद को नित्य आदरसहित ग्रहण करती हैं और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं, जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य आपके चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में केवल आपका ही भरोसा है, अन्य किसी का नहीं तथा जिनके चरण आपके तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके रामनामरूप मंत्रराज को जपते हैं और परिवार सहित आपकी पूजा करते हैं, जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक जानकर सर्व भाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं और ये सब कर्म करके सबका एकमात्र यही फल मांगते हैं कि श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मनरूपी मंदिरों में सीताजी और रघुकुल को आनन्दित करने वाले आप दोनों बसिए।

सबु करि मांगहि एक फलु राम चरनरति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बअहु सिय रघुनन्दन दोउ।।

(मनास २/१२९)

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह है, न लोभ है, न क्षोभ है., न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है-हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए। जो सबके प्रिय और हितकारी हैं, जिन्हें दु:ख और सुख तथा प्रशंसा और निन्दा समान हैं, जो विचारक सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जागते-सोते आपकी ही शरण हैं, और आपको छोड़कर जिनकी दूसरी कोई गति नहीं है, हे रामजी! आप उनके मन में बसिए' जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी है, जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दु:खी होते हैं और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन है। हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मन्दिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए।

स्वामी सखा पितु मातु गुरु जिन्ह के सब तुम तात।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु सिय सहित दोउ भ्रात।।

(मानस २/१३०)

जो अवगुणों को छोड़ कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुन्दर मन आपका घर है। जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप

सीता सहित निवास कीजिए। जाति, पाँति, धन धर्म,बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथ जी! आप उसके हृदय में रहिए।

जाति-पाँति धनुधरम बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई।
सब तजि तुम्हहि रहई उर लाई।
तेहि के हृदयं रहहु रघुराई।।

(मानस् २/१३०/३)

स्वर्ग, नरक और मोझ जिसकी दृष्टि में समान है, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ केवल धनुषबाण धारण किए आपको ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी! आप उनके हृदय में डेरा डालिए। जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है।

जाहि न चाहिअ कबहुं कुछ तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु।।

(मानस २/३१)

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि जी ने श्री रामचन्द्रजी को घर दिखाए। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्रीरामजी के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा-हे सूर्य कुल के स्वामी! सुनिए, अब मैं इस समय के लिए सुखदायक निवास स्थान बतलाता हूँ। आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहाँ पर आपके लिए समस्त प्रकार की सुविधा है, सुहावना पर्वत है और सुन्दर वन हैं। इसके अतिरिक्त वह हाथी, सिहं हिरन और पक्षियों का विहार स्थल भी है। वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने अतिशय प्रंशसा की है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसुइयाजी अपने तपोबल से लाई थी। वह गंगाजी की धारा है, उसका मंदाकिनी नाम है, वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिए डायन रूप है। अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, तप और जप करते हुए शरीर को कसकर रखते हैं। हे रामजी! चलिए, सबके परिश्रम को सफल कीजिए और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी अपना गौरवशाली स्वरूप और गौरव प्रदान कीजिए।

चित्रकूट गिरि करहु निवासु।
तहँ तुम्हार कानन चारु।
करि केहरि मृग बिहग बिहारु।।
नदी पुनीत पुरान बखानी।
अत्रि प्रिया निज तप बल आनी।।
सुरसरि धार नाऊँ मंदाकिनी।
जो अब पातक पोतक डाकिनी।
अत्रि आदि मुनिश्वर बहु बसहीं।
करहिं जोग जप तप तन कसहीं।।
चलहु सफल श्रम सब कर करहू।
राम देहु गौरव गिरिबरहू।।

- एस.एफ. एस.ए अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०

विश्वज्योति वर्षः ७३, सं. ८
ISSN 0505-7523 नवम्बर ,२०२४

सुनहु उमा ते लोग अभागी (रामचरित मानस ३.२.३३)

- ताराचन्द आहूजा

धर्मग्रन्थों का कथन है कि मानव जीवन चौरासी लाख योनियों में लाखों-करोड़ों वर्षों तक भटकने के पश्चात् प्रभु की अहैतुकी कृपा से प्राप्त होता है। शास्त्रों में इसे अतिशय दुर्लभ या देवदुर्लभ जीवन बताया गया है; क्योंकि देवता भी मनुष्य शरीर की प्राप्ति के लिए लालायित रहते हैं। उसका कारण है कि मनुष्य शरीर अनित्य होने पर भी इस मृत्युलोक में अर्थ प्रदान करने वाला है- '**अनित्यमपि इह अर्थदम्!**' अर्थ से अभिप्राय है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। मनुष्य इन चारों अर्थों को अपने जीवन में प्राप्त करने का अधिकारी है। पुराणों में इसे **पुरुषार्थ चतुष्टय** की संज्ञा दी गई है। इन चार पुरुषार्थों में बीच के दो यानी अर्थ और काम तो प्रारब्धानुसार प्रत्येक योनि में बिना परिश्रम के भी प्राप्त होते रहते हैं परन्तु धर्म और मोक्ष के लिये प्रयत्न करना होता है। इन दो पुरुषार्थों में भी मोक्ष की प्राप्ति को परम पुरुषार्थ बताया गया है जो केवल धर्माचरण द्वारा मानव शरीर में ही प्राप्त हो सकता है। देवयोनि में मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि वह केवल भोगयोनि है। पुण्य क्षीण होने पर प्राणी को अपने कर्मानुसार स्वर्ग से पुनः मृत्युलोक में भेज दिया जाता है। श्रीमद्भागवत में यही बात भक्त प्रह्लादजी अपने साथियों को समझाते हुए कहते हैं-

सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम्।
सर्वत्र लभ्यते देवाद्यथा दुःखमयत्नतः।।

(७/६/३)

अर्थात् हे दैत्यपुत्रों! शरीर को प्राप्त होने वाले सुख-भोग तो देह के उत्पन्न होने के साथ ही निर्धारित हुए रहते हैं। अतएव वे तो हानि, बीमारी एवं दुःख के समान ही बिना परिश्रम किए तथा बिना इच्छा प्रकट किए ही स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। सुख-दुःख तो प्रारब्ध के अधीन हैं जो समय आने पर प्राप्त हो ही जाएंगे। मोक्ष ही ऐसा प्रसाद है जिसके लिए यत्न करना आवश्यक है। परन्तु मनुष्य तो विपरीत मार्ग का पथिक है। जो काम प्रारब्ध के अधीन है, उसके लिए वह जीवन भर भाग-दौड़ करता है और जहाँ धर्म और मोक्ष के लिए परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है, वहां उसकी ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। इसी बात को रेखांकित करते हुए संत नरसी मेहताजी कहते हैं-

ऋतुलता पत्र फल फूल आपे जथा,
मानवी मूर्ख मन व्यर्थ सोचे।

जेहना भाग्य मां जे समे जे लख्युँ,
तेहने तेसमे तेज पहोंचे।।

अर्थात् मूर्ख मनुष्य सांसारिक पदार्थो की प्राप्ति के लिए व्यर्थ ही अपने मन में चिन्ता करता है। जिस प्रकार ऋतुएं लताओं में पत्र, फल फूल समयानुसार प्रदान करती हैं, उसी प्रकार जिसके भाग्य में जिस समय जो लिखा है, उस समय उसको वह प्राप्त होता ही है। मनुष्य शरीर मिलता है ईश्वर प्राप्ति के लिए, परन्तु जीव माया के मोह में पड़कर अपने वास्तविक लक्ष्य को भूल जाता है और विषय-भोग में ही अपना सारा जीवन गंवा देता है। इसीलिए उसे पुनः जन्म-मृत्यु के दुष्चक्र में फंसना पड़ता है। वीतराग पुरुष विषय-भोग पदार्थों की ओर देखता ही नहीं। वह केवल अपने जीवन के परम ध्येय-भगवत्प्राप्ति पर ही अपना सम्पूर्ण ध्यान केन्द्रित रखता है। वह जानता है कि मानव शरीर अतिशय दुर्लभ-होने के साथ-साथ क्षणभंगुर भी है। यह कब शक्तिहीन हो जाएगा अथवा नाश को प्राप्त होगा, इसका किसी को कोई पता नहीं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति का यही प्रयास रहता है कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपने ध्येय को प्राप्त कर ले। '**बुढ़ापे में प्रभु के गुण गांएगें**', यह विचारकर बैठे रहने से तो बाद में पछतावे के अतिरिक्त कोई उपाय शेष नहीं बचेगा। भर्तृहरिजी ने **वैराग्यशतक** में ठीक ही कहा है-

यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने तु कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः।।

अर्थात् यह कायारूपी घर जब तक सही सलामत है और वृद्धावस्था दूर है, इन्द्रियां तथा मन-बुद्धि अपना-अपना कार्य करने में समर्थ हैं तथा आयु शेष है, तभी तक बुद्धिमान मनुष्य को आत्मकल्याण का साधन कर लेना चाहिए। जरावस्था में शरीर अशक्त होने के कारण साधना नहीं कर पाता। आग लगने पर कुंआ खोदने की मूर्खता करने का कोई लाभ नहीं होता। करोड़ों स्वर्णमुद्राओं को देने पर भी मृत्यु के समय को एक क्षण के लिए भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। मृत्यु आने से पहले कोई सूचना भी नहीं देती। अतः धीर पुरुष अपना हिताहित समझकर समय रहते प्रभु भजन में संलग्न हो जाते हैं। मनुष्य जन्म प्राप्त होने पर भी जो पुरुष अपने जीवन के परम ध्येय की अनदेखी करता है, उसको वेद आत्महत्यारा कहता है-'स भवेदात्मघातक'। गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं-

जो न तरइ भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।।

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि मोक्ष के खुले द्वाररूप मनुष्य शरीर को पाकर भी जो पक्षी की तरह घर में आसक्त रहता है, उसे 'आरूढ़च्युत' समझना चाहिए। मनुष्य शरीर प्राप्त होने पर कहा जाता है कि प्राणी प्रगति के शिखर पर पहुँच गया है फिर भी जो मनुष्य अपने

करणीय कार्य को नहीं करता, जिसके लिए उसे यह सौगात मिली है यानी मोक्ष के लिए प्रयत्नशील नहीं होता और विषयभोग में ही पूरा जीवन खपा देता है तो उसे पुन: चौरासी के चक्कर में आना पड़ता है। यही है आरूढ़च्युत होना अर्थात अंतिम सीढ़ी से नीचे गिरकर पुन: प्रथम सीढ़ी पर पहुंच जाना या यों कहिए कि आसमान से पाताल में गिरना। तात्त्विक दृष्टि से देखा जाए तो पशु और मनुष्य में कोई अंतर नहीं है। जिस विषय-सुख को गधा भोगता है तथा जिस सुख को स्वर्गाधिपति इन्द्र भोगता है, वे दोनों एक समान ही हैं। इन्द्र की दृष्टि में मनुष्य का भोग तुच्छ दिखाई देता है और मनुष्य को श्वान तथा गधे का भोग तुच्छ लगता है परन्तु अपनी दृष्टि से तो प्रत्येक प्राणी को एक समन भोग-सुख का अनुभव होता है, इसलिए विषय-सुख की प्राप्ति को मनुष्य शरीर का ध्येय नहीं कहा जा सकता। अत: मनुष्य का हित किसमें है, इस पर विचार करना चाहिए। यही प्रसंग उद्धवजी को समझाते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

एषां बुद्धिमतां बुद्धिर्मनीषा च मनीषिणाम्।
यत् सत्यमनृतेनेह मर्त्येनाप्नोति मामृतम्।।

(श्रीमद्भावगत ११/२९/२२)

अर्थात् चतुर मनुष्य की चतुराई और बुद्धिमान की बुद्धि इसी में है कि इस संसार में आकर इस क्षणभंगुर और नश्वर शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी को प्राप्त करले। तुलसीदासजी का कथन है कि जिस शरीर से परमपद की प्राप्ति करनी थी, उसका उपयोग विषयभोग में करके मनुष्य अपनी मूर्खता से मानो घुंघची लेकर बदले में पारसमणि दे रहा है यानी अपने लिए ही अपनी कब्र खोद रहा है-**ताहि कबहुं मल कहइ न कोई, गुंजा गहइ परसमनि खोई।**

गुरुवाणी कहती है कि मनुष्य देह तो गोविन्द से मिलाप के लिए मिली है, इसका दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिए हे मनुष्य! तू किसी पूर्ण संत की शरण में जाकर केवल प्रभु का भजन कर, दूसरा कोई भी काम तेरे आत्मकल्याण के कार्य में सहायक सिद्ध नहीं होगा-

भई प्रापत मानुख देहुरिया, गोविन्द मिलन की एहो तेरी बरिया।
अवरि काज तेरे कितै न काम, मिल साध संगत भज केवल नाम।।

महापुरुषों का कथन है कि मनुष्य जीवन अत्यन्त छोटा है और उसकी तुलना में जीवन का लक्ष्य बहुत बड़ा है। अतएव अल्प समय में बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने की चुनौती उसके सामने है। ऐसी स्थिति में मनुष्य को कांचन, कामिनी और कीर्ति जैसे तुच्छ सांसारिक प्रयोजनों के फेर में पड़कर अपना अमूल्य समय नहीं गँवाना चाहिए। धन, स्त्री, संतान, पद-प्रतिष्ठा आदि में लगाया गया समय उसके आत्म-कल्याण के कार्य में कोई मदद नहीं करेगा। उसकी यह भयंकर भूल उसे बहुत महंगी पड़ेगी। यह एक ऐसी भूल होगी

जिसका कोई प्रायश्चित ही नहीं हो सकता। जो मनुष्य विषय भोगों में अपना समय, श्रम और ऊर्जा बर्बाद करता है वह निरा अज्ञानी है, मूर्ख है और केवल प्रमाद ही कर रहा हे। भगवान शिव माता पार्वती से कहते हैं कि ऐसे लोग तो अभागे हैं जो भगवान को छोड़कर विषयों में अनुरक्त रहते हैं-'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं विषय अनुरागी। (३/२/३३) अतएव अभीष्ट यही है कि मनुष्य समय रहते अपने परम ध्येय की प्राप्ति में प्रयासरत हो जाए। वह समय के अभाव का कोई बहाना नहीं बनाए; क्योंकि संसार का काम कभी खत्म नहीं होगा। किसी प्रभु प्रेमी का यह कथन सत्य के कितना निकट है; तनिक विचार करें-

जब तक है जिन्दगी, फुरसत न होगी काम से।
कुछ समय ऐसा निकालो, प्रेम करलो राम से।।

- निर्देशक-धार्मिक पुस्तकालय, ४/११४, एस.एफ. एस., अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-३०२०२०, मो. ८९४९३४४२४३

ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

बच्चों का व्यवहार ठीक करने के लिए ज़रूरी है कि पहले बड़े अपना व्यवहार ठीक करें

- सीताराम गुप्ता

घर में सबसे छोटा सदस्य है मेरा पौत्र। जब वो सवा-डेढ़ साल का था तो वह मौक़ा लगते ही झाड़ू उठा लाता था और लगता था फ़र्श पर झाड़ू लगाने की कोशिश करने। कभी वाइपर उठा लाता था और उसे चलाने लगता। कोई भी कपड़ा मिल जाए उसे उठाकर पानी की बाल्टी में या जहाँ कहीं भी पानी मिले उसमें डुबोकर गीला कर लेता था और कभी फ़र्श पर पौंछा लगाने लगता था तो कभी मेज़ साफ़ करने लगता था। गाड़ी में अगली सीट पर बैठता था तो कभी रेडियो का वॉल्यूम बढ़ा देता था तो कभी 'एसी' का, कभी वाइपर का लीवर घुमा देता था तो कभी गियर रॉड खींचने का प्रयास करता था। वो ऐसा क्यों करता था? वो ऐसा इसलिए करता था क्योंकि वो हम सबको ऐसा करते हुए देखता था और उसे खुद करने की कोशिश करता था। यह अत्यंत स्वाभाविक है। बच्चा खाली या शांत नहीं बैठ सकता। उसे कुछ न कुछ खेल करना ही है। घर के सदस्यों के काम और दूसरे क्रियाकलापों की नकल करने से अच्छा खेल उसके लिए और कोई हो ही नहीं सकता।

प्रश्न उठता है कि क्या बच्चे के खेलने के लिए उसके पास खिलौने नहीं होते जो वो घर की दूसरी चीजों से खेलने की कोशिश करता है? होते हैं, पर्याप्त होते हैं। लेकिन वास्तविकता ये है कि यदि उसके चारों ओर बहुत सारी चीजें रखी हों तो वो उन सबसे भी खेलेगा। अपने आसपास की सभी चीज़ें उसे आकर्षित करती हैं। घर के सदस्य जिन चीज़ों का प्रयोग करते हैं और जैसे करते हैं वह भी उन सभी चीज़ों का उन्हीं की तरह या अपने तीरक़े से प्रयोग करना चाहता है। यही उसका खेल है। बच्चा खिलौनों से भी प्राय: तभी खेलता है जब दूसरे लोग उनसे खेलना शुरू करते हैं। वास्तविकता ये भी है कि लोग अपने बच्चों के लिए जो खिलौने खरीदते हैं वो बच्चों की पसंद के नहीं अपनी पसंद के खरीदते हैं। वो खिलौने लाते हैं और बच्चे को बतलाते हैं कि ऐसे खेलो। लोग प्राय: खाने-पीने की चीजें भी बच्चों की प्राय: खाने-पीने की चीज़ें भी बच्चों की पसंद के बजाय अपनी पसंद की ही लाते हैं। हम बच्चों से अपनी बात मनवाने या अपनी पसंद उस पर थोपने का प्रयास करते ही रहते हैं।

बच्चा जब बड़ों की पसंद के खिलौनों से खेलेगा, उनकी पसंद की चीजें खाएगा तो ये भी स्वाभाविक ही है कि उनकी पसंद या जरूरत के दूसरे काम भी उनकी तरह ही करने की कोशिश करेगा क्योंकि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यही तो हम उसे सिखा रहे होते हैं। और, यदि ऐसा करने से उसे रोकेंगे तो मचलने लगेगा, और रोएगा/रूठेगा। उसका ये व्यवहार बड़ों से प्रश्न करना ही है कि जब आप सब लोग ये सब कर रहे हो तो मेरे करने में क्या बुराई है? उसका व्यवहार बिल्कुल ठीक है। यदि आप अपने सामने नहीं करने देंगे तो वो आँखें बचाकर या पीछे से करेगा। तो नन्हे बच्चों को रोकने की बजाय वो जो भी करें, करने दीजिए। बस, उनकी सुरक्षा का ध्यान रखिए। उन्हें सर्दी-गर्मी, आग-पानी व गंदगी से बचाने का प्रयास करते रहिए। जो चीजें उनके लिए खतरनाक या कोई दुर्घटना पैदा करने वाली हो सकती हों उनकी पहुँच से दूर कर दीजिए। खतरनाक रसायन व दवाएँ उनकी पहुँच से बहुत ऊपर रखिए।

यदि बच्चा इधर-उधर से कोई गलत चीज़ उठाकर मुँह में डालता है तो उसे रोकना जरूरी है। इसके लिए उसका पेट भरा होना भी जरूरी है। उसे सही समय पर उचित आहार दीजिए लेकिन खाने-पीने के मामले में भी बच्चे कम परेशान नहीं करते। अधिकांश बच्चे प्राय: दूध पीने या खाने से बचने की कोशिश करते हैं और जब घर के दूसरे या बड़े सदस्य भोजन करते हैं तो उनके भोजन में से उठाकर खाने का प्रयास करते हैं। ये तो बड़ी अच्छी बात है। इस बात का लाभ उठाना चाहिए। जब घर के बड़े सदस्य कुछ भी खाने के लिए बैठें तो ऐसा भोजन लेकर बैठें जो बच्चों के लिए भी अनुकूल हो। खुद भी खाएँ और बच्चों को भी खिलाएँ। जिन घरों में तीसरी या चौथी पीढ़ी के बुज़ुर्ग जैसे दादा-दादी, नाना-नानी या परदादा-परदादी आदि होते हैं बच्चों के लिए हर तरह से बड़ा ठीक रहता है। बुज़ुर्ग प्राय: दलिया-खिचड़ी आदि लेते हैं तो बच्चा भी उनके साथ ये सब खाद्य पदार्थ ले लेता है जो उसके लिए ठीक रहते हैं।

इसके बाद सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न है शिष्टाचार व नैतिकता के विकास का। अनुकरण अथवा नक़ल का हम सबके जीवन में बहुत महत्त्व है। नक़ल के बिना हम सीख ही नहीं सकते लेकिन ग़लत चीज़ों की नक़ल करना घातक है। बच्चा भी अनुकरण से ही सीखता है। वह बड़ों का ही अनुकरण करता है। अपने अंदाज में वो बड़ों की ही भाषा बोलता है और बड़ों की तरह ही बोलता है। हम शिष्टाचार का यथोचित पालन करें और बच्चों को समझाएँ कि वे शिष्टाचार का पालन करें तो ये संभव नहीं। बच्चों को शिष्ट बनाना है तो माता-पिता को शिष्ट बनना होगा। हम घर में एक दूसरे से व मेहमानों या अन्य आगंतुकों से जैसा व्यवहार करते हैं अथवा जैसी भाषा बोलते हैं, बच्चा भी उसी का अनुकरण करेगा। अभिवादन भी उन्हीं की तरह करेगा।

लहजा उसका अपना होता है लेकिन भाव बड़ों का ही आ जाता है। माता-पिता व घर के अन्य सदस्यों में जैसी आदतें होती हैं बच्चा बड़ी सूक्ष्मता से न केवल उनका निरीक्षण करता रहता है अपितु उनकी नक़ल भी करता रहता है।

यदि बच्चों में सचमुच अच्छी आदतें डालनी हैं और उन्हें सुसंस्कृत बनाना है तो माता-पिता को भी स्वयं में अच्छी आदतें डालनी होंगी और सुसंस्कृत बनना होगा। बच्चा जब हमारे व्यवहार अथवा व्यक्तित्व में कमी अथवा दोगलापन पाता है तो वह विचलित हो जाता है। हमारी कथनी व करनी का अंतर या किसी के सामने व उसकी पीठ पीछे उसके प्रति व्यवहार या आचरण में अंतर या किसी के सामने व उसकी पीठ पीछे उसके प्रति व्यवहार या आचरण में अंतर बच्चे पर सबसे ज्यादा बुरा प्रभाव डालता है। वह समझ ही नहीं पाता कि कथनी ठीक थी या करनी ठीक है। उसे पता नहीं चल पाता कि किसी के सामने उसके बारे में कही गई बात ठीक थी या उसके जाने के बाद पहली बात के विपरीत कही गई बात उचित है। उसकी प्रशंसा या चापचूसी ठीक थी या उसकी आलोचना ठीक है। बच्चे के संपूर्ण आचरण व उसके नैतिक चरित्र के विकास में इन बातों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। हम बात-बात पर गुस्सा करते हँ या झूठ बोलते हैं तो बच्चा भी ऐसा ही करेगा। हमारे व्यवहार अथवा आचरण में दोगलापन है तो बच्चे के व्यवहार व आचरण में भी वह जल्दी ही आ जाएगा।

प्राय: ऐसा होता है कि माता-पिता या घर के अन्य सदस्यों में कुछ कमियाँ होती हैं। यह स्वाभाविक है लेकिन कोई माता-पिता या घर का अन्य सदस्य ये नहीं चाहता कि उनके बच्चों में भी ये कमियाँ आएँ। वे बच्चों को उन कमियों से बचाने के लिए पूरा जोर लगा देते हैं। यहाँ स्वयं को ठीक करने की बजाय बच्चों को ठीक करने पर जोर होता है। इसके लिए समझाने से लेकर डाँटने-डपटने व मारने-पीटने तक सभी तरीके आजमाए जाते हैं। लेकिन बच्चों पर इसका सकारात्मक नहीं नकारात्मक प्रभाव ही पड़ता है। बच्चों को जिन बातों के लिए जोर देकर रोकने का प्रयास किया जाता है बच्चे उन्हीं के बारे में सोचते रहते हैं और जो हमारी सोच होती है वही अंततोगत्वा हमारे जीवन की वास्तविकता में परिवर्तित हो जाती है। बच्चे भी इस प्रभाव से अछूते नहीं रहते। माता-पिता अथवा घर के अन्य बड़े सदस्यों के इस प्रकार के आचरण के कारण ही बच्चों का भोलापन समाप्त हो जाता है जो अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण होता है।

गुण हों या अवगुण ऊपर से नीचे की ओर संक्रमित होते हैं। आपने सुना ही होगा कि जैसा बाप वैसा बेटा। जैसा राजा वैसी प्रजा। जहाँ राजा अथवा जनप्रतिनिधि अपने कर्त्तव्य का ठीक से पालन नहीं करता वहाँ प्रजा का भी अपने कर्तव्य पालन में शिथिल हो जाना अस्वाभाविक नहीं। राजनीति का स्तर गिरने का ही ये परिणाम है कि

जनता में नैतिकता का निरंतर ह्रास हो रहा है और भ्रष्टाचार लगातार बढ़ता ही जा रहा है। कोई तो, जो जो ऊपर से वास्तव में एक अच्छी शुरुआत करे। नेताओं की करनी और कथनी के अंतर ने सुधार की संभावनाओं को निर्मूल कर डाला है। मात्र चीख-चीखकर लच्छेदार भाषण देने से नैतिकता का विकास असंभव है। प्रवचन अथवा नैतिक शिक्षा की किताबें छलावे अथवा व्यापार के अतिरिक्त कुछ नहीं। बच्चे ही नहीं हम सब भी अपने परिवेश से ही ज्यादा सीखते हैं अत: परिवेश को सुधारना अनिवार्य है और परिवेश हमारे सामूहिक आचरण से निर्मित होता है।

एक अत्यंत प्रचलित कथा है जो अपने पहले भी अवश्य ही सुनी होगी। एक महिला का बच्चा गुड़ बहुत खाता था जिससे उसका पेट खराब रहता है। वह अपने बच्चे को साथ लेकर एक महात्मा के पास गई और महात्मा से कहा, ''महात्मा जी मेरा बेटा बहुत गुड़ खाता है जिससे इसका पेट खराब रहता है। मैंने इसे समझाने की बहुत कोशिश की पर ये मानता ही नहीं। आप इसे समझाएँगे तो ये जरूर मान जाएगा और ठीक हो जाएगा।'' महात्मा ने महिला को दस दिन बाद आने को कहा। दस दिन बाद महिला फिर अपने बच्चे को साथ लेकर महात्मा के पास पहुँची तो उन्होंने बड़े प्यार से बच्चे को समझाया कि ज्यादा गुड़ खाना सेहते के लिए अच्छा नहीं। पेट ठीक रखना है और स्वस्थ रहना है तो ज्यादा गुड़ खाना छोड़ दो। इस पर महिला ने साधु से पूछा कि महात्मा जी इतनी सी बात क्या आप उस दिन नहीं समझा सकते थे?

महात्मा ने कहा कि समझा तो सकता था उस दिन मेरी बात का असर बच्चे पर नहीं होता क्योंकि तब तक मैं ख़ुद ज्यादा गुड़ खाता था। मेरे आचरण के दोगलेपन के कारण बच्चे पर मेरे उपदेश का कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि अब मैंने स्वयं गुड़ खाना छोड़ दिया है इसीलिए बच्चे को भी अच्छी तरह से समझा पा रहा हूँ कि ज्यादा गुड़ खाना सेहत के लिए अच्छा नहीं। जब तक हम अपने आचरण को नहीं बदलेंगे तो कोरे उपदेश से समाज को बदलना संभव नहीं। यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि हमारे बच्चों में अच्छी आदतों व सही नैतिक मूल्यों का विकास हो तो उन सभी आदतों व नैतिक मूल्यों को स्वयं माता-पिता को भी अपने अंदर विकसित करना होगा। दूसरा कोई उपाय या विकल्प हो ही नहीं सकता।

- ए.डी.-१०६-सी, पीतमपुरा, दिल्ली-११००३४
फोन. ०९५५५६२२३२३
Email:srgupta54@yahoo.co.in

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

'विचार परक आलेख' भारतीय ज्ञान परंपरा के विचारणीय सूत्र

- प्रदीप कुमार सामंतराय

भारत की वैदिक चिंतन परम्परा का दायरा अत्यन्त व्यापक रहा है। हमारी ऋषि परंपरा ने संकुचित दृष्टिकोण को अस्वीकार्य माना है। जिस समृद्ध ज्ञान परंपरा को स्वामी विरजानंद सरस्वती और उनके शिष्य महर्षि दयानंद सरस्वती ने प्रतिष्ठित किया था, दुर्भाग्य से वह महान् परंपरा आज उपेक्षित है। वैसे भी इन दिनों वैदिक वाङ्मय उपेक्षित तथा पौराणिक साहित्य प्रिय है। जो चिंतन परंपरा वैज्ञानिक सोच रखती है तथा अज्ञानता का तिरस्कार करती है वह हमेशा उपेक्षित और अप्रिय रही है। अज्ञानता पूर्ण विचार ही स्वार्थ पूर्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। हमारा वैदिक सोच स्वार्थ पूर्ति वाली अवधारणा का विरोधी रहा है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा प्रातिसाख्य आदिग्रंथ हमारी उत्कृष्टतम दार्शनिक धारा की धरोहर है। सम्प्रति हमारा ध्यान अपनी मूल्यवान धरोहर से हट गया है। औपनिषदिक ज्ञान का अवलोकन कर हमें यह बोध होता है कि ऋषियों का अध्यात्म चिंतन कितना गहरा और बारीक था। उपनिषदों में जिस वैदिक चिंतन का मंथन है उस पर विश्व के कई महान् तत्त्व वेत्ताओं तथा ज्ञान साधकों ने आश्चर्य व्यक्त किया है। कुल उपनिषद् १०८ हैं पर उनमें ११ ही सर्वप्रमुख हैं। आद्य शंकराचार्य से लेकर अत्याधुनिक काल तक उपनिषदों पर लेखनी चलती रही है तथा भविष्य में भी विचार-मंथन का दौर चलता रहेगा।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के माध्यम से मैं यह कहना चाहता हूँ कि विज्ञान सम्मत वैदिक ज्ञान परंपरा के सर्वश्रेष्ठ सूत्रों को भारतीय जनमानस के समक्ष पहुँचाने का कार्य होता रहना चाहिए।

हमारी ज्ञान साधना पर कुछ अप्रतिम ग्रंथों का सृजन आधुनिक युग में हुआ है जिनमें निम्नांकित ग्रंथ द्रष्टव्य हैं:-

* वैदिक संपत्ती-पं. रधुनंदन शर्मा
* वैदिक संपदा-पं. सामश्रमी
* भारत वैभव-डॉ. ओमप्रकाश पांडेय

आदिग्रंथों का सृजन/संपादन तथा प्रकाशन इसी महान् उद्देश्य की पूर्ति में किया गया एक सद् प्रयास है।

पं. भगवतदत्त द्वारा रचित 'प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास' नामक ग्रंथ भी इसी कड़ी

का अंग हैं। वैदिक अनुसंधान से जुड़ी कुछ संस्थाओं ने भी इस धारा को मजबूती प्रदान की है। कुछ वर्ष पूर्व प्रोफेसर गोविन्द चंद्र पाण्डेय (सुविख्यात इतिहासविद् और दार्शनिक)ने भी 'ऋग्वेद' पर विस्तृत टीका प्रस्तुत कर बड़ा अकादमिक कार्य किया है जो उच्चस्तरीय कार्य ज्ञान साधना की दिशा में होते रहे हैं उन्हें प्रचारित और करने की जरूरत है। किसी भी विद्वान का किसी विचारधारा विशेष से लगाव हो सकता है। हमें उनके कार्य के प्रति सम्मान भाव रखना है। 'प्रातिशाख्यों' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने विश्व स्तरीय कार्य किया है। इसी प्रकार कुछ संस्कृत विद्वानों ने ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों पर भी कार्य किया है। डॉ. गंगा प्रसाद पाण्डेय (प्रयागराज) इस दिशा में अग्रणी विद्वान माने जाते हैं।

महामहोपाध्याय पं. दामोदर सातवलेकर जैसे वैदिक विद्वान को हम भूल से गए हैं जिन्होंने चारों वेदों का भाष्य किया था। इसी प्रकार हिन्दू धर्म का इतिहास लिखने वाले भारतरत्न पं. पी. वी. काणे को भी हम याद नहीं करते हैं। धर्मपाल और उनका व्यापक शोध कार्य अहमदाबाद से प्रकाशित हो चुका है। पर, वह कार्य जन-जन तक नहीं पहुँच पा रहा है।

भारत,भारतीयता पर धर्मपाल जी ने जो लिखा है वह बेजोड़ है। इसी दिशा में भारतीय भाषाओं पर प्रोफेसर गणेशदेवी का भारतीय लोक भाषा सर्वेक्षण पर ४५ खंडों में प्रकाशित कार्य हमारे देश के विष्वविद्यालयों तक नहीं पहुंच पाया है।

उपर्युक्त विवेचन के माध्यम से मैं मात्र यह विचार विंदु अध्येता समाज के समक्ष रखना चाहता हूँ कि भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास, दर्शन, अध्यात्म, भारतीय साहित्य तथा प्राचीनतम संस्कृत वाङ्मय की दिशा में जो भी उच्च कोटी का अकादमिक कार्य संपादित हुआ है उस ज्ञान परक कार्य को संरक्षित करते हुए अध्येता वर्ग तक पहुंचाने की जरूरत है। इतिहासकार डॉ. भगवत शरण उपाध्याय, प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे जैसे कई सुनामधन्य व्यक्तित्व भारतीय मनीषियों की परंपरा में हैं जिन्हें हमें पुनः ससम्मान सुप्रतिष्ठित करना है। भारतीय लोक जीवन के जितने भी श्रेष्ठ तत्व हैं उन पर **आचार्य क्षितिमोहन सेन** ने भी गंभीर लेखन काय्र किया है। आचार्य क्षितिमोहन सेन की कृति '**कबीर**' और **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी** की कृति 'कबीर' ने भारतीय संत परंपरा के योगदान को प्रतिपादित किया है। भारतीय भक्ति परंपरा और भारतीय संत परंपरा के कारण मध्यकाल में भारत का लोक मानस अपने आत्मविश्वास को जीवित रखा सका। इसी श्रृंखला में **प्रोफेसर चक्रधर त्रिपाठी** का ग्रंथ 'कबीर की भक्ति' भी भक्ति की अवधारण को समझने में एक विशिष्ट ग्रंथ है।

हमें आचार्य नरेंद्रदेव, डॉ. वासुदेवशरण

अग्रवाल तथा डॉ. राममनोहर लोहिया के द्वारा प्रतिपादित विचारों को आत्मसात् करते हुए उन्हें आज के भारतीय समाज के मध्य पहुँचाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो सारतत्व है उसे ग्रहण कर आगे, बढ़ाते हुए नये समाज का निर्माण हमारा लक्ष्य बनना चाहिए।

प्राचीनकाल से आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं और उन महापुरुषों ने जितने भी सर्वश्रेष्ठ ग्रंथों का सुजन किया है उन्हें अपनी धरोहर मानकर भविष्य का पथ निर्मित करना है। ज्ञान और ज्ञान साधकों के प्रति विश्वेश्वरानंद वैदिक शोध संस्थान भी वंदनीय तथा वरेण्य है। अन्त में मैं भारतीय चिंतन परंपरा को नमन करता हूँ।

- ग्राम ठाकुरगड, जिला अनगुल, ओड़िशा, पिन. ७५९१२५
फो. ७००८३४६८३३

PEER REVIEWED JOURNAL
ISSN 0505-7523

विश्वज्योति वर्ष: ७३, सं. ८
नवम्बर ,२०२४

पातञ्जल योग सम्मत विभूति

- शोधछात्र चेतन शर्मा

योग विभूति की परिभाषा-

विभूति शब्द वि उपसर्ग पूर्वक भू धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर होता है, जिसका अर्थ होता है- ऐश्वर्य।[१] इसके योग सिद्धि, सामर्थ्य-विशेष, क्षमता, महाभूति आदि पर्याय हैं। इनकी संख्या अनन्त हैं। योगसाधना के अन्तर साधक को साधनजय के फलस्वरूप विशेष सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। इससे साधक की योगसाधना के प्रति निष्ठा बढ़ती है तथा विश्वास हो जाता है कि वह साधना के मार्ग पर ठीक चल रहा है। सांख्य आदि शास्त्रों में हमें आठ प्रकार की सिद्धियों[२] का वर्णन मिलता है। जिनके प्रभाव से योगी इच्छामात्र से समस्त पदार्थो की प्राप्ति के अधीन नहीं हुआ करते हैं; बल्कि वस्तुओं (विषयों) की योगी के ज्ञान के अनुरूप होना पड़ता है। इसी आशय को महाकवि भवभूति ने पद्य के द्वारा प्रकट किया है।

लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।[३]

अर्थात् सामान्य जन की वाणी 'वस्तु' (पदार्थ) की अनुगामी हुआ करती है, वस्तु विशेष का वर्णन करती है, 'अर्थ' का अनुगमन करती है। परन्तु ऋषि के मुख से निकले 'शब्द' का तो स्वयं अर्थ (वस्तु) पीच्छे पीच्छे चले आया करता है। इसी को सामान्य भाषा में 'सत् वचन' नाम देने का प्रचलन है। ये सिद्धियाँ यद्यपि आसक्ति उत्पन्न करने के कारण कैवल्य प्राप्ति के मार्ग में बाधक बताई गई हैं, किन्तु इनका अनुभव करने से लक्ष्यभूत योग के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है।[४] विभूतियों के निरूपण से जिज्ञासु को यह निश्चय हो जाता है कि अनात्म पदार्थ विषयक समाधि से जब पूर्वोक्त अणिमादि ऐश्वर्य अवश्य प्राप्त होते हैं, तब पुरुष विषयक समाधि से पुरुष साक्षात्कार द्वारा कैवल्य पद की प्राप्ति भी अवश्य होगी। इसलिए इनका कथन करना श्रेयस्कर कहा गया है।

योग विभूतियों के भेद-

पातञ्जलि योगदर्शन में योग के आठ प्रकार कहे गये हैं, जिनमें-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँच बहिरङ्ग साधन तथा धारणा, ध्यान, समाधि-ये तीन अन्तरङ्ग साधन कहलाते हैं। इनके आधार पर विभूतियाँ दो प्रकार की कही गई हैं- १. बहिरङ्ग-साधनसाध्य विभूतियाँ, २. अन्तरङ्ग-साधनसाध्य विभूतियाँ। इनमें से क्रमश विवेचन इस प्रकार है-

बहिरङ्ग साधनसाध्य विभूतियाँ-

यमनियमादि के सिद्ध हो जाने पर

वितर्कराहित्य से प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ बहिरङ्ग साधनसाध्य विभूतियाँ कहलाती है।[५] यह योगी की यमनियमादि सिद्धि की सूचक होती हैं। पातञ्जल योगदर्शन में इनका निरूपण इस प्रकार किया गया है-

१. यमसाध्य विभूतियाँ-

अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- ये पाँच यम है।[६] इनमें क्रमशः स्थिति (पारङ्गता) प्राप्त होने पर साधक को जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उनको हम इस प्रकार जान सकते हैं-

(1.) अहिंसा साध्य विभूति- योगियों की अहिंसा-विषयक स्थिति होने पर उस योगी के निकट प्राणियों का पारस्परिक वैरभाव छूट जाता है।[७] यह वैरभाव कतिपय प्राणियों का न समझकर सभी प्राणियों का ही जानना चाहिए।[८] आचार्य विज्ञान भिक्षु[९] और वाचस्पतिमिश्र के अनुसार- मन, कर्म, वचन के द्वारा हिंसा की भावना नितान्त नहीं उभरती है, तो ऐसे अहिंसा प्रतिष्ठत योगी- नैसर्गिक, विरोधशील, अश्वमहिष, मूषक मार्जार, सर्प नकुल आदि प्राणी में मित्रभाव को प्राप्त करता है तथा अपना परस्पर स्वाभाविक वैरभाव का त्याग कर देता है।

सत्यसाध्य विभूति- सत्य की दृढस्थिति होने पर योगी में क्रियाफल के आश्रय का भाव आ जाता है।[११] सत्यपालन में परिपक्वता आ जाती है, कर्त्तव्यफल क्रियाश्रय वन जाता है। जो कर्म किसी ने नहीं किया है, उसका भी फल उसे प्रदान कर देने की शक्ति उस योगी में आ जाती है। सत्यप्रतिष्ठत योगी किसी को कह देता है कि तू धार्मिक हो जा- तो वह धार्मिक हो जाता है।[१२] वह भविष्यकालिन घटनाओं को जान लेने का सामर्थ्य रखता है। आचार्य विज्ञानभिक्षु ने सत्यसाध्य विभूति को वाणी तथा मन दोनों का उपलक्षक माना है।[१३]

अस्तेयसाध्य विभूति- चौर्यवृत्ति के अभाव की दृढता में योगी के सामने सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।[१४] विज्ञानभिक्षु के अनुसार अस्तेयनिष्ठ योगी समस्त दिग्-दिगन्तर के मूल्यवान माणिक्य योगी को कल्पना के बिना ही उसे प्राप्त हो जाते हैं[१५] अर्थात् सर्वोत्कृष्ट रत्नों की प्राप्ति योगी कल्पना मात्र से प्राप्त कर सकता है। जिसे भाष्यकार ने 'सर्वदिक्स्थानि' विशेषण द्वारा प्रस्तुत किया है।[१६]

ब्रह्मचर्यसाध्य विभूति- ब्रह्मचर्य की दृढता स्थिति होने पर सामर्थ्य का लाभ होता है,[१७] तथा उसके मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर में अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है। आचार्य व्यासदेव ब्रह्मचर्य के लिए 'सिद्धि' पद का प्रयोग करते हैं।[१८] जिसके आधार पर वाचस्पति मिश्र, रामानन्द यति तथा हरिहरानन्द आरण्यक प्रभृति आचार्यों ने 'सिद्धि' पद को ब्रह्मनिष्ठ साधक की ऊहादि सिद्धि प्राप्तिपरक माना है।[१९] इन्हीं ऊहादि सिद्धियों का वर्णन सांख्यदर्शन में भी प्राप्त होता है।[२०] आचार्य विज्ञानभिक्षु 'सिद्धि' पद का अर्थ ज्ञान के सिद्धि (स्वयं ज्ञानी) होने पर करते है।[२१] व्यासभाष्य के अन्तिम वाक्यांश- 'विनयेषु

ज्ञानमाधातुम्'- को देखने पर आचार्य विज्ञानभिक्षु के द्वारा किया गया 'सिद्धि' पद का अर्थ समीचीन प्रतीत होता है, क्योंकि शिष्यों को ज्ञान का उपदेश देने से पूर्व उपदेशक का स्वयं ज्ञानी होना आवश्यक है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य की पूर्णस्थिति वाला योगी ही शिष्यों में ज्ञान का संक्रमण करने में समर्थ होता है।

अपरिग्रहसाध्य विभूति- उपरिग्रह विषयक स्थिरता प्राप्त होने पर साधक को पूर्व तथा वर्तमान जन्मों तथा उनके प्रकार का सम्यग्ज्ञान होता है।[२२] सूत्र में आए 'जन्मकथनतासम्बोधः' पद का विग्रह करते हुए आचार्य विज्ञानभिक्षु का कथन है।[२३] जिसका भाव है कि जब भविष्यकाल जन्मों का स्वतः और प्रकटतः अपरोक्षज्ञान होता है, मैं पूर्व जन्म में क्या था? किन कारणों से था? वर्तमान जन्म कैसे हुआ? किन कारणों से हुआ? आगे हम क्या होंगे? किन कारणों से होंगे? इस प्रकार अपरिग्रह की सिद्धि जिज्ञासा होने पर यथार्थ रूप से उन स्थितियों को जान लेता है।[२४]

नियमसाध्य विभूतियाँ- शौच, सन्तोष, तपस, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम है।[२५] जो निम्न प्रकार से सिद्धियों को प्रदान करने वाले है।

शौचसाध्य विभूति- पूर्णतया शौच के अनुष्ठान से साधक में अपने अङ्गों के प्रति वैराग्य तथा दूसरों से संसर्ग न करने की इच्छा उत्पन्न होती है।[२६] प्रकृत सूत्र में बाह्यशौचविषयिणी सिद्धि के बारे में कहा जा रहा है। योगाभ्यासी नित्य क्रियाओं तथा अन्य विशिष्ट यौगिक क्रियाओं- नेति, धौति, आदि के द्वारा शोधन करते रहने पर भी जब शरीर और अङ्गों की रचना के विषय में चिन्तन करता है, तो वह शरीर को अशुद्ध ही पाता है। ऐसे शैचप्रतिष्ठा योगी को शरीर सम्बन्धिनी अशुचिता का पूर्णरूप से साक्षात्कार होता है।[२७] इस शरीर सम्बन्धी दोषदर्शन के फल को बतलाते हुए आचार्य विज्ञानभिक्षु लिखते हैं कि कायदोषदर्शी योगी शरीर मात्र के प्रति आसक्तिरहित हो जाता है।[२८] आभ्यान्तर शौच की दृढ़ता के फलस्वरूप बुद्धिसत्व की शुद्धि होती है। आशय यह है कि मैत्री आदि की भावना के द्वारा अथवा जप, तप आदि अन्य किसी साधन द्वारा रजोगुण और तपोगुण रूपी मल अभिभूत हो जाते हैं और शुद्धसत्व का उद्रेक होता है।[२९] उस सत्वोद्रेक से राग, द्वेष ईर्ष्या आदि मलों का अभाव होकर मनुष्य का अन्तःकरण निर्मल और स्वच्छ हो जाता है। मन की व्याकुलता का नाश होकर प्रसन्नता बनी रहती है; विक्षेप दोष का नाश होकर एकाग्रता आ जाती है और सब इन्द्रियाँ मन के वश में हो जाती हैं। अतः उसमे आत्मदर्शन की योग्यता आ जाती है।[३०]

संतोषसाध्य विभूति- संतोष के वितर्करहित हो जाने पर अनुत्तम सुख का लाभ होता है।[३१] आचार्य विज्ञानभिक्षु अनुत्तम पद के विषये में लिखते हैं- 'नास्त्युत्तमं सुखं यस्मात्'[३२] अर्थात् जिससे उत्तम दूसरा कोई सुख नहीं है ऐसे सर्वोत्तम सुख का लाभ होता है। तृष्णारूप प्रतिबन्ध के दूर हो जाने

पर चित्त में स्वाभाविक सत्वगुण के आधिक्य के कारण सुखस्वभावत: स्वत: स्फुरिलत होता है और ऐसे सुख के विषय में चित्त को विषय की अपेक्षा नहीं रहती है। यह निर्विषय दिव्य सुख है, जिसे आत्मसुख कहते हैं।[३४]

तपस्साध्य विभूति-

तप के प्रभाव से जब अशुद्धि का नाश हो जाता है, तब शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है।[३५] यह अशुद्धि क्या है? अशुद्धि अधर्म को कहते हैं और यह अशुद्धि तमोगुण का धर्म है।[३६] अणिमादि शारीरिक सिद्धियाँ तथा दूर से सुनना, देखना आदि इन्द्रियों की सिद्धियाँ कही गई हैं।[३७] स्वधर्म पालन के लिए व्रत उपवास आदि करना या अन्य प्रकार के कष्ट सहने का नाम 'तप' है।[३८] श्रीमद्भगवद्गीता में कायिक, वाचिक तथा मानस भेद से, शरीर और इन्द्रियों के तप का उत्तम निर्देश किया गया है जिसमें देवता, ब्राह्मणादि की सेवा, पूजा, शुद्धता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का एक निष्ठा से पालन करना यह सब 'कायिक तप' कहे गये हैं।[३९] अन्त:करण में वेचैनी न पैदा करने वाले सत्य-प्रिय और हितकर सम्भाषण आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन एवं अपने कर्त्तव्य-कर्मों के निरन्तर अनुष्ठान को वाचिक तप कहा गया है।[४०] मन की प्रसन्नता, अन्त:करण में क्षोभ या विवाद न आने देना, सब उचित उपयुक्त कार्य शुद्ध भावना से करना; ये मानस तप[४१] कहे गये हैं। इस प्रकार से तप के अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों के मल का नाश हो जाता है, तब योगी का शरीर, स्वस्थ, स्वच्छ और हल्का हो जाता है तथा उसे 'अणिमादि'[४२] शरीर-सम्बन्धी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं एवं सूक्ष्म, दूर देश में और व्यवधानयुक्त स्थान में स्थित विषयों को देखना, सुनना आदि इन्द्रिय सम्बन्धी सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है।

स्वाध्यायसाध्य विभूति- स्वाध्याय के स्थिर होने से अपने अभिमत देवता का साक्षात्कार होता है। मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन तथा प्रणवादि के जप का सम्यगनुष्ठान करने से साधक के मस्तिष्क में आकस्मिक रूप से अभिलषित अर्थ प्रतिभासित हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कोई दिव्य आत्मा आकर इस अर्थ को बता गई है। ऐसे स्वाध्यायशील योगी के मस्तिष्क अथवा भावनाओं में देव, ऋषि एवं सिद्ध आत्मा साधक को दर्शन देने चले आते हैं[४३] तथा उसके सभी कार्यों को सम्पन्न करते है।[४४] योगी इनसे अचानक सन्मार्ग एवं सम्प्रवृत्तियों की दिशा को जानने समझने में सफल होता है।

ईश्वर प्रणिधानसाध्य विभूति- ईश्वर प्रणिधान से सभी बाधाओं, अन्तरायों का निराकरण हो जाता है और शीघ्र ही योगी को समाधि की सिद्धि हो जाती है।[४५] यहाँ पर सम्प्रज्ञातसमाधि की ही सिद्धि मुख्यार्थ रूप में ग्रहण करनी चाहिए; क्योंकि समाधि-सिद्धि का स्वरूप भाष्यकारों ने स्पष्टत: समाधिकाल की प्रज्ञा के रूप में ही प्रस्तुत किया है।[४६] अब प्रश्न यह उठता है कि यदि ईश्वर प्रणिधान से ही सम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि हो

जाती है, तब तो फिर उस ईश्वर प्रणिधान नामक नियम को छोड़कर शेष सभी योगाङ्ग व्यर्थ ही हुए? इस शङ्का के समाधानार्थ आचार्य विज्ञानभिक्षु[४७] और आचार्य वाचस्पति मिश्र[४८] का अभिमत है कि अन्य सभी योगाङ्गों की उपयोगिता ईश्वर प्रणिधान में ही है। ईश्वरप्रणिधान में दृष्ट, अदृष्ट और अवान्तरव्यापार के रूप में से सभी अङ्ग उपयोगी हैं। इसलिए ये व्यर्थ नहीं है।

आसनसाध्य विभूति- आसन-सिद्धि हो जाने से शरीर पर सर्दी, गर्मी, आदि द्वन्द्वों का प्रभाव नहीं पड़ता, शरीर में उन सब को बिना किसी प्रकार की पीड़ा के सहन करने की शक्ति आ जाती है। अत: वे द्वन्द्व चित्त को चंचल बनाकर साधन में विघ्न नहीं डाल सकते।[४९] आसन सिद्धि के बारे में विष्णुपुराण में कहा गया है कि - यति को भद्रासन आदि में से किसी एक आसन के अवलम्बन में यम, नियम आदि के सेवनपूर्वक योगाभ्यास करना चाहिए।[५०]

प्राणायामसाध्य विभूति- प्राणायाम के अनुष्ठान प्रकाशस्वरूप विवेकरव्याति का आवरण क्षीणता को प्राप्त होता है।[५१] साधक जैसे-जैसे प्राणायम का अभ्यास करता रहता है वैसे ही उसके विवेकज्ञान को अवछादित करने वाला कर्मसंस्कार दुर्बलता को प्राप्त होते जाते है।[५२] कर्मसंस्कारों के विषय में आचार्यों का मन्तव्य है कि यहाँ कर्म शब्द के प्रयोग द्वारा पापरूप कर्मसंस्कार तथा उस पापरूप कर्म के कारणभूत अविद्यादि क्लेशों का ग्रहण किया गया है।[५३] अत: प्राणायाम के अभ्यास से संसारमूलक कर्मसंस्कार दुर्बल होते-होते सर्वथा क्षीण हो जाते हैं; तब साधक का ज्ञान सूर्य की भक्ति प्रकाशित हो जाता है।[५४] इसलिए प्राणायाम को मनीषियों ने परम तप कहा है।[५५]

प्रत्याहारसाध्य विभूति- इन्द्रिय जय प्रत्याहार का मुख्य फल है।[५६] यह इन्द्रियजय क्या है? इस विषय में आचार्य भगवान् जैगीषव्य के मत को उद्धृत करते हैं कि चित्त की एकाग्रता के कारण इन्द्रिय वृत्ति का निरुद्ध हो जाना ही इन्द्रियजय है।[५७] इन्द्रियों की तथाकथित वश्यता को ही परमा वश्यता कहा गया है;[५८] इससे समस्त इन्द्रियां भी निरुद्ध हो जाती हैं। यह वश्यता योगनिष्पति का कारण है।[५९]

इस प्रकार योग के बहिदरङ्गसाधन यमादि से लेकर प्रत्याहार पर्यन्त प्राप्त होने वाली विभूतियों (सिद्धियों) का विवेचन योगसंमत्त ग्रंथों में किया गया है।

- विश्वेश्वरानन्द विश्वबन्धु संस्कृत एवं भारत-भारती अनुशीलन संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, साधु आश्रम, होशियारपुर, पंजाब-१४६०२१।

---

१. वि भू+क्तिन् = भूति: ऐश्वर्यम्। वाच, षष्ठो भाग, पृ. ४९१५, चतुर्थो भाग, पृ. ४१३

२. (क) ऐश्वर्यम् = ईश्वरभाव: तच्चाष्टगुणम् अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति: प्रकारम्यमीशित्वं वशित्वं यत्र कामावसायित्वं चेति। गै. वा. भा., का २३

३. उ.रा.च., I.१० ४. तृतीयपदे तत्प्रवृत्यनुगुणाः श्रद्धोत्पादहेतवो विभूतयों वक्तव्या। त.वै. III .१
५. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः यो.सू. II .३५
६. अहिंसासत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः यो.वा. II .३०
७. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः यो.वा. II .३५ ८. सर्वप्राणिनां भवति। व्या.भा. II .३५
९. तस्यां सत्यां तत्सन्विधिस्थानां सर्वप्राणिनां मार्जारमूषकादीनामन्योन्य वैरत्यागः यो.वा. II .३५
१०. तै.वै. II .३० ११. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। यो.वा. II .३६
१२. वा. II .३६ १३. वही १४. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्। यो.सू. II .३७
१५. सर्वाभ्यो दिग्भ्यो रत्नोपस्थानं सर्वरत्नोपस्थानम् यो.वा. II .३७
१६. रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मूक्तादिकेऽपि च। अमर, II .०९.९३
१७. सर्वदिक्स्थान्यत्योपतिष्ठन्ते रत्नानि व्या.भा. II .३७ १८. ब्राह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः। यो.सू. II .३०
१९. त.वै., ११.३८, म.प्र. II .३८, भा. II .३८ २०. सा.का., ५१ २१. यो.वा. II .३८
२२. यो.सू. II .३९ २३. यो.वा. II .३९ २४. यो.वा. II .३९
२५. शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। यो.सू. II .३२
२६. शौचात् स्वाङ्गजुप्सा परैरसंसर्गः। वही, II .४० २७. यो.वा. II .४०
२८. तज्ज्ञानस्य फलमाह - कायानभिषङ्गीति।
३०. क्षालितचित्तमलस्य सत्वशुद्धिः सत्वोद्रेको भवति। वही, II .४१
३१. सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। यो.सू. II .४२
३२. यो.वा. II .४२ ३३. त.वै. II .४२ ३४. यो.वा. II .४२
३५. यो.सू. II .४३ ३६. यो.वा. II .४३, त.वै. II .४३ ३७. व्या.भा. II .४३
३८. यो.सा.सं.पृ .१२२ ३९. श्रीमद्भगवदगीता, यो.वा. XVII .१४
४०. वही, XVII .१५ ४१. वही. XVII .१६
४२. स्वाध्यादिष्टदेवतसम्प्रयोगः। यो.सू., II .४४
४३. यां देवतां द्रष्टुमिच्छति सैव दृश्या भवतीत्यर्थः। यो.वा. II .४४
४४. कार्ये चास्य वर्त्तन्ते। व्या.भा. II .४४ ४५. समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्। यो.सू., II .४५
४६. ततोऽस्य प्रज्ञा यथाभूतं प्रजानातीति। या.भा., II .४५ ४७. यो.वा., II .४५
४८. ईश्वरप्रणिधान सिद्धौ दृष्टादृष्टावान्तरव्यापारेण तेषामुपयोगात्। त.वै., II .४५
४९. ततो द्वन्द्वानभिघातः। यो.सू., II .४८ ५०. एवं भद्रासनादीनां समास्थाय गुणैर्युतम्। वि.पु., VI .०७.३९
५१. ततो क्षीयते प्रकाशवरणम्। यो.सू., II .५२
५२. प्राणायामानभ्यस्यतोऽस्य योगिनः क्षीयते विवेकज्ञानावरणीयं कर्म। व्या.भा., II .५२
५३. यो.वा., II .५२, त.वै., II .५२ ५४. भा. II .५२
५५. तपो न परं प्राणायामात्। व्या.भा., II .५२
५६. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्। यो.सू., II .५२

जीवन मिट्टी का खिलौना

–देवेन्द्र कुमार मिश्रा

माटी की देह है
अन्दर हाड़ मास भरा
किस बात पर इतराते
न जन्म का पता
न मरण की खबर
आने वाले पल में क्या हो
किसको क्या है खबर
जीवन मिट्टी का खिलौना
एक साँस में जीवन है
एक साँस में मृत्यु
पल की खबर नहीं
सामान सौ वर्ष का
ये मूर्खता नहीं तो क्या है
माटी की देह माटी में मिल जाना

फिर क्यों घबराना, फिर क्यों इतराना
किस बात की गर्मी
किस बात का गुस्सा
किस बात का अंहकार
राजा हो या रंक
सभी का एक हाल होना है
क्यों फिर उजले कपड़े पहन
दूसरों को नीचे दिखाना
कोई जमीन में दफना दिया जाएगा
बस एक प्यार ही शेष रह जाना
जीवन इसी से लगता सुहाना
जीवन मिट्टी का खिलौना
कुछ देर खेलना और फिर टूट जाना।।

पीपल की छांव

अब कहां वो गाँव
अब कहां पीपल की छांव
अब कहां वो मिट्टी की महक
अब कहां वो भाईचारा
अब कहां वो चैन और सुकून
अब कहां माँ के हाथ की रोटी
अब तो शहर हैं, जहां कोई किसी को
जानता नहीं, पहचानता नहीं
अब न पेड़ हैं न वो हरियाली

अब न रही पहले जैसी दीवाली
अब बस सब दिखावा हो गया
गाँव सारा शहर में बस गया
अब न खेत न खलिहान
अब न वो जीने के सामान
अब वो प्रेम प्यार रहा नहीं
अब वो दिल से दिल की बात नहीं
अब न पानी न शुद्ध वायु
अब न हया है आँखों में

न सम्मान बड़ों के लिए
वो पीपल की छांव
वो प्रेम भरे गाँव
वो मिलकर रहना
उस समय का क्या कहना
कितना शीतल कितना सुनहरा था
वो वक़्त वो आन बान शान
वो हीर रांझे वो लैला मजनूं सा इश्क
अब नहीं रहा वैसा कुछ भी
बस सूखा खड़ा है, पीपल
याद दिलाता है पिछले पल।।

पकडा है हाथ

कान्हा पकड़ा है अब हाथ
न जाना छुड़ाकर साथ
मेरा कोई नहीं
तुमसे ही है मेरी गति
तुम जो छोड़ दोगे साथ
तो कैसे होगा निबाह
तुम बिन मेरा जीना मुश्किल
तुम बिन अनाथ हूं नाथ
कोई नहीं जगत में ऐसा
नहीं प्रिय तुम कोई जैसा
मैंने विनती रख दी सामने
मेरी भक्ति खरा सोना
हृदय में बसे हो नाथ
अब कहां जाऊँ तुम बिन
तुम ही मेरे जीवन
तुम ही मेरे मधुवन
कुछ दया करो
दर्शन की है आस
मेरे मित्र, बंधु, माता पिता
सब कुछ तुम हो प्रिय मेरे
अपना जीवन अर्पित किया
तुमको सब कुछ समर्पित किया
अब तुम जानो क्या करना है
मुक्ति या भोगना है और संसार
सहना है अभी दुख की मार
तुम जैसा चाहो मुझे कुबूल
फूल मिले या मिले शूल
अब हाथ दे दिया हाथों में
जो हो अंजाम मेरा
सब कुछ सौप दिया तुमको
अब तुम जानो क्या करना है
मुझे तो वफा मिले या जफा
नाम आपका जपना है।
दार्शनिक वाङ्मय में अविद्या को बन्धन या

- स्वरचित मौलिक
A-29, First Floor, Rajul Dream City
Amkhera Road, Jabalpur (M.P.) 482004

संस्थान-समाचार

दान-

श्री जतेन्द्र कौशिक, नई दिल्ली।	5100/-
श्री जय नारायण शर्मा, होशियारपुर।	2100/-
श्री शिव कुमार वर्मा, होशियारपुर।	500/-
प्रो. इन्द्रदत्त उनियार, होशियारपुर।	1000/-
श्रीमती शारदा देवी, धर्मपत्नी स्व. श्री शुभ कुमार शर्मा, होशियारपुर।	4 पंखे

हवन-यज्ञ - विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान के कार्य-दिवस का शुभारम्भ प्रतिसप्ताह के प्रथम दिन सत्संग-मन्दिर में हवन-यज्ञ से किया जाता है।

पद्मभूषण स्व. आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जयन्ती समारोह -

विश्वेश्वरानन्द-वैदिक-शोध-संस्थान, साधु आश्रम होशियारपुर के आद्य संचालक पद्मभूषण स्व. आचार्य (डॉ.) विश्वबन्धु जी की 127वीं जयन्ती दिनांक 30-09-2024 को सोल्लास से मनाई गई। इस अवसर पर डॉ. अवनीश सूद, एस.एम.ओ. (रिटायर्ड) होशियारपुर मुख्य-अतिथि एवं यजमान थे। संस्थान के संचालक प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल जी सहित सभी विद्वद्-समाज तथा गणमान्य व्यक्तियों ने माल्यार्पण कर उनका सम्मान किया। इस अवसर पर सर्वप्रथम हवन-यज्ञ का आयोजन किया गया। डॉ. रवीन्द्र कुमार बरमोला, साधु आश्रम, होशियारपुर ने मंच संचालन का कार्य किया।

तदनन्तर समारोह में प्रो. (डॉ.) रेणू कपिला, सदस्य, वी.वी.आर.आई. कार्यकारिणी सभा ने डॉ. अवनीश सूद जी का परिचय दिया।

इस श्रद्धांजलि समारोह में प्रो. रघवीर सिंह, प्रो. प्रेम लाल शर्मा व प्रो. प्रवीण सिंह राणा ने अनन्य वेद-भक्त आचार्य विश्वबन्धु जी द्वारा वेदों से सम्बन्धित किये गये महान् शोध कार्यों का वर्णन किया तथा डॉ. कन्हैया लाल पराशर ने कविता गान करके आचार्य विश्वबन्धु जी को श्रद्धांजलि अर्पित की।

अन्त में मंच संचालक ने उपस्थित प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल, संचालक, प्रो. रेणू कपिला, प्रो. रघबीर सिंह, प्रो. प्रेम लाल शर्मा, डॉ. कन्हैया लाल पराशर, प्रो. प्रवीण सिंह राणा, डॉ. शिव कुमार वर्मा, प्रो. भद्रसेन, प्रो. दलजीत सिंह कंग तथा समारोह में उपस्थित सभी मेहमानों, संस्थानीय प्राध्यापकों, कर्मिष्ठो तथा छात्र-छात्राओं का धन्यवाद किया।

अन्त में सभी के लिए चायपान का आयोजन किया गया।

शुभ समाचार -

संस्थान संस्कृत विद्वान् के **डॉ. देशराज सांख्यान** जी की सुपुत्री आयुष्मती **प्रिया शर्मा**, का शुभ विवाह चिंरजीवि **वरुण शर्मा** सुपुत्र **श्री अशोक शर्मा**, पौण्टा साहिब (हि.प्र.) के साथ दिनांक 11-10-2024 को होशियारपुर में सम्पन्न हुआ। संस्थान सहर्ष वर-वधू को शुभाशीष देता है और उनके उज्जवल भविष्य की कामना करता है।

शोक समाचार -

संस्थान के परम हितैषी स्व. श्री शुभ कुमार शर्मा जी का देहान्त

विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान की ओर से श्री शुभ कुमार शर्मा जी के दिनाँक २८ सितम्बर, २०२४ को स्वर्गवास हो जाने पर शोक प्रस्ताव पारित किया गया।

श्री शर्मा जी एक मेहनती, नेक और ईमानदार व्यक्ति थे और वी.वी. आर. आई. के साथ इनका बहुत पुराना सम्बन्ध था। पोस्ट आफिस में कार्यरत होने से पहले इन्होंने वी.वी. आर. आई. में भी कार्य किया था। इस समय भी आप कई वर्षों से रांस्थान के वार्षिक सदस्य के रूप में अपना योगदान दे रहे थे। इस प्रकार के सज्जन व्यक्ति के चले जाने से उनके परिवार एवं सम्बन्धियों को जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना संभव नहीं।

संस्थान के कर्मचारी वर्ग की ओर से दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है तथा परमपिता परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे तथा उनके परिवारिक जनों एवं सम्बन्धियों को इस दु:ख को सहने करने की शक्ति प्रदान करे।

संस्थान के परम हितैषी स्व. श्री धर्मपाल सभ्रवाल जी का देहान्त

ऊँ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।-गीता ३.२१

-[श्रेष्ठ जन इस संसार में जैसा आचरण करते हैं सामान्य जन भी उनका जैसा आचरण करने का प्रयास करने लगते हैं। क्योंकि, श्रेष्ठ व्यक्ति का कहा वाक्य तो जन सामान्य के लिए 'सत् वचन' हुआ करता है।]

स्वर्गीय श्री धर्मपाल सभ्रवाल, पूर्व राज्य सभा सदस्य एवं पूर्व राज्य मन्त्री, पञ्जाब सरकार का २०.९.२०२४ को निधन हो गया। वी.वी.आर.आई. संस्थान, दिवंगत आत्मा की शाश्वत शान्ति की प्रार्थना करता है और संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट करता है। स्वर्गीय श्री धर्मपाल जी द्वारा अपने राज्यसभा सदस्यता के दौरान वर्ष २००६ में रु. ६,००,०००/-(छ: लाख) की अनुदान राशि से, वी.वी.आर.आई. संस्थान में, एक सेमीनार हाल बनवा कर एक स्मरणीय धरोहर भेण्ट की गई। इसके लिए संस्थान आपको हमेशा याद रखेगा।

सत्संग मन्दिर

संस्थान यज्ञशाला

वी. वी. आर. आई. सोसाईटी, होश्यारपुर (पंजाब) की ओर से प्रकाशक व मुद्रक
प्रो. इन्द्रदत्त उनियाल द्वारा वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट प्रैस, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर से छपवा कर, वी. वी. आर. इन्स्टीच्यूट, पो. आ. साधु-आश्रम,
होश्यारपुर-१४६ ०२१ (पंजाब) से २८-१०-२०२४ को प्रकाशित।